पूज्य काशीराम पुष्प माला का पुष्प नं० १

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

सन्त-शब्द

लेखक
श्री श्री १००८ पञ्जाब केसरी स्वर्गीय आचार्य,
श्री काशीराम जी महाराज के सुशिष्य
मुनि श्री हरिश्चन्द्र जी महाराज
(केसरी शिष्य)

प्रकाशक
पूज्य काशीराम जैन, पुस्तक प्रकाशक समिति

ावृत्ति
०

मूल्य
छ आना

वीर स० २४८४
वि० स० २०१४
सन् १९५७

प्रकाशक—
पूज्य काशीराम जैन,
पुस्तक प्रकाशक समिति ।

समर्पण

तप और त्याग के उज्ज्वल सितारे, मन, वचन,
कर्म से प्राणीमात्र-रक्षक, अहिंसा, सत्य, शील के
शिक्षक, मधुर-भाषी, सरल, पवित्रात्मा,
क्षमासागर, घोर तपस्वी
श्री निहालचन्द जी महाराज
की सेवा में सादर
सभक्ति समर्पित

मुद्रक—
श्री राजकुमार जैन,
राजरत्न प्रेस,
प्रताप रोड, जालन्धर शहर ।

दो शब्द

आजकल का मानव-समाज प्राय. धर्म विमुख हो रहा है और पतन की ओर जा रहा है। सर्वत्र विलासिता का ही वातावरण दिखाई देता है। विलास के रग में रगा हुआ मानव समाज दिन प्रतिदिन एक भयकर रूप को धारण करता जा रहा है, और ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो प्रत्येक मानव की ही हृदय भूमि जो मानवता का निवासस्थान है और जो सद्धर्म रूपी अमृत रस के पवित्र स्रोत से उज्ज्वल एव देदीप्यमान रहती थी वह एक विलास-भवन सा बनी हुई है। चारों ओर विलास की ही चर्चा है। क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध विलासिता मे ही मुग्ध हैं। यदि कोई भूल से ऐसे व्यक्तियों की बैठक मे किसी धर्मनिष्ठ व्यक्ति की बात कर दे तो उसका उपहास होता है और उस को मूर्ख तक कह देना कोई बडी बात नहीं। इस प्रकार विलास मे अन्धे तथा ग्रसित मानव ऐसे अनुचित तथा लज्जाजनक कुकर्म कर रहे हैं, कि जिन को देख या सुन कर आत्मा सहसा काँप उठती है, मानवता लज्जा के कारण अपना मुँह आँचल मे छुपा लेती है। इन भावों को लक्ष्य मे रख कर केसरी शिष्य मुनि श्री हरिश्चन्द्र जी महाराज ने "सन्त-शब्द" पुस्तक मे दान, शील, तप और भावना

के रूप मे जो गद्यात्मक सग्रह किया है वह अति सुन्दर एवं सराहनीय है। यह पुस्तक पथभ्रष्ट वाह्य-दृष्टि मानवों के लिये, जो दुराचार के पुजारी बन कर विलास रूपी विष का पान करते हुए मानवता की आहुति दे रहे हैं, मार्ग-दर्शक ज्योति है।

कामान्ध मानव-वर्ग के लिये, जो केवल परिग्रह के ही उपासक हैं, जिस का दृष्टिबिन्दु उत्कृष्ट से उत्कृष्ट सासारिक सुखों को ही प्राप्त करना है, जिस के अन्त करण मे नानाविध ससार रूपी नाटक प्रतिबिम्बित होते रहते हैं और जो अपने स्वाभाविक सुख से बेभान उसी में आनन्द मान कर उसी में खोया रहता है, यह पुस्तक "दिव्य जागरण" है।

काम अग्नि के सदृश है। जिस प्रकार अग्नि के प्रवेश में आई हुई प्रत्येक वस्तु उसी मे सदा के लिये नष्ट हो जाती है ठीक उसी तरह काम की मधुर निद्रा में तल्लीन व्यक्तियों के लिये, जो उस का ग्रास बन कर उसी में खो जाते हैं, और समारभिमुख बन कर एक उन्मत्त की भांति चौरासी लक्ष जीवायोनि मे इधर-उधर भटकते हुए नष्ट होते रहते हैं, यह पुस्तक "दिव्य आत्म ध्वनि" है।

इस पुस्तक का अध्ययन करने वाले एक अद्भुत अमृत रस का पान करेंगे, जिसके अलौकिक प्रभाव से उनमें सद्दर्शन तथा सद्ज्ञान का दिव्य प्रकाश होगा। उनके शरीरों का रोम २ खिल उठेगा, उनकी अन्तरात्माएँ हर्ष से नाच उठेंगी, और स्वाधीन

सुख को प्राप्त करने के लिये उत्सुकता उन के मन-मन्दिरों मे हिलोरें लेने लगेंगी। स्वाधीन सुख ही यथार्थ सुख है क्यो कि इस से आत्मा के स्वाभाविक गुणो का आविर्भाव होता है। पूर्ण स्वाधीन सुख आत्मा के समस्त गुणों के प्रकट होने को कहते हैं। इसी का दूसरा नाम मोक्ष है। मोक्ष ही जीव का घर है। जिस प्रकार कोई जीव अपने घर के मार्ग को भूल कर उस की खोज में इधर उधर भटकता हुआ अत्यन्त दुखी होता है, ठीक उसी तरह मोक्ष रूपी घर के मार्ग से विस्मृत जीव उस की खोज मे चतुर्गति रूप ससार में भटकता हुआ विविध दारुण दु खो को सहन करता हुआ अत्यन्त व्याकुल होता है। जिस प्रकार विस्मृत घर के मार्ग को पा कर जीव के हर्ष का कोई पारावार नही होता, ठीक उसी तरह अपने मोक्ष रूपी घर को पा कर जीव को अपार आनन्द की प्राप्ति होती है।

बाबू शान्ति स्वरूप जैन,
अम्बाला शहर।

———

धन्यवाद

१ ला० रूडा मल बनारसी दास जैन बलाचौर

२ ला० बसन्ता मल लाहौरी राम जैन बंगा

३ ला० कानशी मल रूडा मल जैन बंगा

४ ला० बसन्ता मल चरण दास जैन बंगा

५ ला० मेहर चन्द रुलदू राम जैन बंगा

६ ला० काशी राम गोकल चन्द जैन बंगा

७ ला० रत्न चन्द सरदारी लाल जैन बंगा

८ ला० किशन चन्द धर्म चन्द जैन बंगा

और गुप्त दान

इन दानी महानुभावों की सहायता से "सन्त-शब्द" पुस्तक का प्रकाशन हुआ है।

मैं समाज की ओर से इन की उदारता के लिए इन का धन्यवाद करता हूँ।

आपका मन्त्री
सत्य देव जैन,
जुरी मंडी।

सन्त-शब्द

जो मनुष्य नियोग शुद्ध करके भगवान् का ध्यान लगाता है, वह चार गति चौरासी के चक्र से मुक्त होकर अजर अमर पद को प्राप्त होता है।

• • • •

श्रद्धा के बिना की हुई सन्ध्या, दिए हुए दानादि, की हुई तपश्चर्या, यहाँ तक कि श्रद्धा के बिना किया हुआ कोई भी शुभ कर्म कोई फल नहीं देता, वह व्यर्थ जाता है।

• • • •

किसी भी सुख रूप परिस्थिति की प्राप्ति मे साधक को यह नहीं समझना चाहिए कि यह मेरी योग्यता का प्रभाव है, योग्यता का प्रभाव मानते ही अभिमान और आसक्ति उत्पन्न हो जाएँगी, जिन से चित्त अशुद्ध हो जायगा।

• • • •

सन्त के साथ सरलता, विनय, प्रेम और आदर पूर्वक नि.स्वार्थ भाव से व्यवहार करना। महा पुरुषों का सङ्ग, सेवा-सत्कार, नमस्कार और उनकी आज्ञा का पालन करना इत्यादि।

• • • •

मनुष्य को चाहिए कि सदा शास्त्र की मर्यादा का पालन करना। भारी से भारी कष्ट पड़ने पर भी लज्जा, भय, लोभ, काम अथवा किसी भी कारण से मर्यादा का त्याग नहीं करना।

° ° ° °

जिसे जान बूझ कर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, वह कोई भी पाप कर सकता है। इसलिए तुम यह हृदय में अंकित कर लो, कि हमें हँसी मजाक में भी कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए।

° ° ° °

सत्य वाणी ही अमृत वाणी है, सत्य वाणी ही मानवता है, सत्य ही भगवान् है, सत्य एक ही है, दूसरा नहीं सत्य के लिए बुद्धिमान् लोग विवाद नहीं करते।

° ° ° °

जिस मनुष्य के मन से लोभ, द्वेष और मोह ये तीन मनोवृत्तियां नष्ट हो गई है, वही चारों दिशाओं में प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव प्रसारित कर सकता है।

° ° ° °

वैर तो उन्हीं का शान्त होता है, जो इस प्रकार के विचार हृदय से निकाल देते हैं कि मुझे अमुक ने गाली दी, अमुक ने मुझे मारा, मेरा पराभव किया या मुझे लूट लिया।

° ° ° °

क्षमा से क्रोध को जीते, भलाई से बुराई को जीते, कृपण को दान से जीते, और झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते, मान को नरमाई से जीते ।

* * * *

राग और द्वेष दोनो कर्म के बीज हैं । कर्म मोह से उत्पन्न होता है । फिर कर्म जन्म और मरण का मूल है तथा जन्म और मृत्यु दु:ख के हेतु कहे जाते हैं ।

* * * *

जिस को मोह नहीं उस ने दु ख का नाश कर दिया, जिसको तृष्णा नहीं उसने मोह का अन्त कर दिया, जिसने लोभ का परित्याग कर दिया उसने तृष्णा का क्षय कर डाला और जो अकिंचन है उसने लोभ का विनाश कर दिया ।

* * * *

तृष्णा के वशीभूत हुआ, चोरी करने वाला तथा रूप परिग्रह में अतृप्त पुरुष माया और मृषावाद की वृद्धि करता है, परन्तु फिर भी वह दु ख से छुटकारा नहीं पाता ।

* * * *

जो मनुष्य दु ख को दु ख नहीं समझता, जो सुख और स्नेह के वश नहीं होता, जिसे कहीं कोई भय नहीं, सोना और मिट्टी का ढेला जिसकी दृष्टि में समान है । वही सच्चा साधु है ।

* * * *

जिन के हृदय में सम्पूर्ण दुर्गुणों का अभाव होकर सद्गुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उनका जीवन शुद्ध बन जाता है, और वे शीघ्र ही परमात्मा के निकट पहुँच जाते हैं।

° ° ° °

सभी जीवों पर दया करना, प्राणिमात्र से मित्रता रखना, दान देना तथा मधुर बोलना, इन चारों से बढ़कर कोई वशीकरण इस विश्व में नहीं है।

° ° ° °

जो धर्म के गौरव से धर्म को पूज्य मान कर शांत और नम्र होता है, उसी को सच्चा शांत और सच्चा नम्र समझना चाहिए अपना मतलब साधने के लिए कौन शांत और नम्र नहीं बन जाता

° ° ° °

संसार-समुद्र के पार जाने का प्रयत्न न करने वाले मूर्ख मनुष्य को ये विषय भोग नष्ट कर देते हैं। भोग की तृष्णा में फँस कर दुर्बुद्धि मनुष्य अपने आपको ही नाश करता है।

° ° ° °

एकान्त में बैठ कर साधन करते समय भी प्रथम मन इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य ही प्रधान है।

° ° ° °

मन मे जो दुर्गुण-दुराचार और पाप के सस्कार भरे हैं, यह मन का मैलापन है। अत मन को मलिन दोषों से रहित करकेशुद्ध और बलवान् बनाना चाहिए।

* * * *

जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति को, कार्य और अकार्य को, भय और अभय को एव बन्धन और मोक्ष को जानती है, वह सात्त्विक है।

* * * *

विचार करने पर ज्ञात होता है कि अनुकूल परिस्थिति के वियोग को और प्रतिकूल परिस्थिति के आने की शङ्का होने पर जो मन में क्षोभ होता है, उस को भय कहते हे।

* * * *

'मृत्यु सदा निकट रहती है, धन वैभव अत्यन्त चपल है तथा शरीर कुछ ही समय मे मृत्यु का ग्रास बन जाने वाला है। सयोग का परिणाम वियोग ही हे।

* * * *

ज्ञानी वह है जिसे विशुद्ध सम्यग् दृष्टि प्राप्त है और अज्ञानी वह है जिसकी दृष्टि मिथ्या बनी हुई हो। सम्यकत्व के बिना विपुल ज्ञान भी अज्ञान हे और सम्यकत्व की विद्यमानता मे अल्पज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है।

* * * *

जिन के हृदय मे सम्पूर्ण दुर्गुणों का अभाव होकर सद्गुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उनका जीवन शुद्ध बन जाता है, और वे शीघ्र ही परमात्मा के निकट पहुँच जाते हैं।

* * * *

सभी जीवों पर दया करना, प्राणिमात्र से मित्रता रखना, दान देना तथा मधुर बोलना, इन चारों से बढ़कर कोई वशीकरण इस विश्व में नहीं है।

* * * *

जो धर्म के गौरव मे धर्म को पूज्य मान कर शात और नम्र होता है, उसी को सच्चा शात और सच्चा नम्र समझना चाहिए। अपना मतलब साधने के लिए कौन शात और नम्र नहीं बन जाता।

* * * *

संसार-समुद्र के पार जाने का प्रयत्न न करने वाले मूर्ख मनुष्य को ये विषय भोग नष्ट कर देते हैं। भोग की तृष्णा मे फँस कर दुर्बुद्धि मनुष्य अपने आपको ही नाश करता है।

* * * *

एकान्त मे बैठ कर साधन करते समय भी प्रथम मन इन्द्रियों को वश मे करना चाहिए। मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य ही प्रधान है।

* * * *

मन मे जो दुर्गुण-दुराचार और पाप के सस्कार भरे हैं, यह मन का मैलापन है। अत मन को मलिन दोषो से रहित करकेशुद्ध और बलवान् बनाना चाहिए।

* * * *

जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति को, कार्य और अकार्य को, भय और अभय को एव बन्धन और मोक्ष को जानती है, वह सात्त्विक है।

* * * *

विचार करने पर ज्ञात होता है कि अनुकूल परिस्थिति के वियोग की और प्रतिकूल परिस्थिति के आने की शङ्का होने पर जो मन मे क्षोभ होता है, उस को भय कहते है।

* * * *

'मृत्यु सदा निकट रहती है, धन वैभव अत्यन्त चपल है तथा शरीर कुछ ही समय मे मृत्यु का ग्रास बन जाने वाला है। सयोग का परिणाम वियोग ही है।

* * * *

ज्ञानी वह है जिसे विशुद्ध सम्यग् दृष्टि प्राप्त है और अज्ञानी वह है जिसकी दृष्टि मिथ्या बनी हुई हो। सम्यकत्व के बिना विपुल ज्ञान भी अज्ञान है और सम्यकत्व की विधानता मे अल्पज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है।

* * * *

जिसकी आत्मा में सच्चे चरित्र का उद्भव हो चुका है, और कोई धर्म करने की आवश्यकता नहीं रह जाती और किसी स्थान पर भटकने की जरूरत नहीं है।

* * * *

मनुष्य बुराई से बच कर रहे और भलाई का सेवन करे, यही चरित्र कहलाता है। चरित्र के बिना कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

* * * *

जब तक अज्ञान दूर नहीं होता, आत्मा एक कदम भी आगे नहीं बढ सकती। वह कितनी हो कठिन तपश्चर्या करे, साधना करे और निराहार रहे, मगर अज्ञान हटे बिना लेश मात्र भी उसका विकास नहीं होता।

* * * *

अज्ञान को दूर करना है तो शास्त्रों का मनन करो, अभ्यास करो, चिन्तन करो तपश्चर्या करो, ज्ञानवानों का सत्संग करो और अपनी आध्यात्मिक भावनाओं को प्राप्त करो।

* * * *

मूर्ख सोचता है कि यह पुत्र मेरा है, यह धन मेरा है, और जब यह शरीर ही अपना नहीं है, तब किस का पुत्र और किस का धन।

* * * *

समय बहुत ही अमूल्य है, अतः एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। रात्रि में सोने के समय आत्मचिन्तन और भगवान् के नाम का, जाप, ध्यान करते करते ही सोना चाहिए।

* * * *

स्मरण रखिये, उत्तम से उत्तम भोजन दूषित मन स्थिति से विकार और विषमय हो सकता है, क्रोध, चिन्ता, चिडचिडापन आदि की मन·स्थितियों में किया हुआ भोजन विषैला हो जाता है

* * * *

मनुष्य स्वय ही अपना स्वामी है, दूसरा कौन उसका स्वामी या सहायक हो सकता है ? अपने को जिसने भली भाँति दमन कर लिया, वह ही एक दुर्लभ स्व मित्र प्राप्त कर लेता है।

* * * *

दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना दोष देखना कठिन है, लोग दूसरे के दोषो को भूसे के समान फटकते हैं,किन्तु अपने दोषो को इस तरह छिपाते हैं जैसे चतुर जुआरी हराने वाले पासे को छिपा लेता है।

* * * *

इस सारे प्रपच का मूल अहकार है, इसकी जड मूल से नाश कर देनी चाहिए, अहकार के समूल नाश से ही अन्तःकरण में रमने वाली तृष्णाओं का अन्त हो सकता है।

* * * *

अपने हाथ से कोई अपराध हो गया हो तो उसे स्वीकार करना, और भविष्य में फिर कभी वह अपराध न करना, यह आर्य गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

° ° ° °

जो मनुष्य क्रोधी, कृपण, मत्सर युक्त, शठ और निर्लज्ज होता है और जिसे लोक निन्दा के भय की तनिक भी परवाह नहीं, उसे चाडाल समझना चाहिए।

° ° ° °

जो प्राणियों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, पराई स्त्री के साथ सहवास करता है, शराब पीता है, वह मनुष्य लोक में अपनी जड आप ही खोदता है।

° ° ° °

जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव उष्ण और जल का स्वभाव शीत है, उसी भाँति आत्मा का स्वभाव भी सच्चिदानन्द है।

° ° ° °

यह आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। इस नश्वर शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता आत्मा अविनाशी है।

° ° ° °

'जैसे सर्प, एक कांचुली को छोड कर दूसरी ग्रहण करता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी एक देह को छोड कर दूसरी देह धारण करता है।

° ° ° °

धर्म परम माङ्गलिक वस्तु है। यह सब प्राणियो को सुख देने
है,इस के सेवन करनेसे सम्पूर्ण आपत्तियां नष्ट हो जाती हैं।

* * *

धर्म, सब सिद्धियों का भडार है। कामनाओं को पूर्ण
के लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु के समान है। यही
र चिन्तामणि है, इसलिए धर्म को अपनाना चाहिये।

* * *

तलवार मनुष्य के शरीर को झुका सकती है, मन को नही।
को झुकाना हो तो प्रेम के अस्त्र का प्रयोग करो। जो
: से ऊँचे उठेंगे, वे तलवार से ही नष्ट हो जायेंगे।

* * *

ादि किसी को हँसा नही सकते तो किसी को रुलाओ
किसी को आशीर्वाद नही दे सकते तो किसी को शाप
ो।

* * *

ो विकारों का दास है वह पशु है, जो उन्हे जीत रहा
मनुष्य है, जो अधिकाँश जीत चुका है वह देव और जो
लिए जीत चुका है वह देवाधिदेव है।

* * *

र्म ही सच्चा गुरु, मित्र, माता-पिता भाई और हितकारी
है, धर्म से बढकर इस ससार मे कोई भी रक्षक
।

* * *

जन्म और मृत्यु के इस बहाव में केवल धर्म ही एक आश्रय है। यही प्रतिष्ठा, कीर्ति का मूल है तथा सब के लिये शरण स्वरूप है।

*　　*　　*　　*

जिस प्रकार भोजन के बिना मार्ग में राही दुखी होता है, उसी प्रकार धर्म के बिना यह जीव परलोक में कष्ट पाता है।

*　　*　　*　　*

जब तक बुढापा नहीं आता और जब तक व्याधियाँ नहीं घेरती तथा जब तक इन्द्रियाँ सशक्त हैं, तब तक धर्म का आचरण कर सकता है।

*　　*　　*　　*

अनीति से भयभीत होना अहिंसा नहीं सिखाती। अत अन्याय से भयभीत होने वाले कायर पुरुष अहिंसा का पालन नहीं कर सकते।

*　　*　　*　　*

अहिंसा का भूषण सत्य है और विचार कर बोला गया वचन ही सत्य है। अत अप्रिय सत्य कभी नहीं बोलना चाहिये।

*　　*　　*　　*

साधक पुरुष को प्रमाण रहित परिग्रह अर्थात् वस्तु संग्रह का परित्याग कर देना चाहिये, क्योंकि यह परिग्रह नरक आदि की महान् पीडाओं को देने वाले लोभ को बढाता है।

*　　*　　*　　*

हिंसा समस्त पापों की जननी है और लोभ सब पापों का जनक है। अत: सुख की प्राप्ति के लिये ये दोनों ही छोड देने चाहियें।

* * * *

संसार सागर में डूबे हुए मनुष्यों के लिये नाव के समान तारक, तथा मुक्तिलोक का प्रधान द्वार सज्जन पुरुषों की सङ्गति ही है।

* * * *

जिस घर मे नियम से कार्य नहीं होता, आपस में प्रेम नहीं है और पूज्य पुरुषों का आदर नहीं होता, वह घर कभी फूलता फलता नहीं है।

* * * *

पाप करने वाला मनुष्य तो संसार मे पापी कहलाता है, परन्तु जो ग्रहण किए हुए व्रत का खण्डन करता है वह मनुष्य महा पापी कहलाता है।

* * * *

जैसे रवि का प्रकाश होते ही अंधकार का नाश हो जाता है, उसी तरह गुरु के सिखाए हुए पवित्र ज्ञान से मनुष्यों के मलिन विचार भी नष्ट हो जाते हैं।

* * * *

दुष्ट पुरुषों की संगति से गुण भी दूषित हो जाते हैं, इसलिए दुष्ट पुरुषों का संग करना नहीं चाहिये, दुष्टों से हमेशा बच कर रहो।

* * * *

जो मनुष्य भेदभाव को त्याग कर सब जीवों से भाई के समान सन्मैत्री भाव रखता है वही सच्चा पण्डित है।

* * * *

पाप में लगे हुए, दुर्बुद्धि विरोधी पुरुषों को, मीठे वचनों से समझाना चाहिये। कठोर वचनों से उनके साथ बर्त्ताव नहीं करना चाहिये।

* * * *

जिस प्रकार बाज, बलपूर्वक चिड़िया आदि पक्षियों को, मार देता है, उसी प्रकार यह काल रूपी सर्प लोगों को खा जाता है।

* * * *

संसार के सम्पूर्ण भोग विष और किंपाक फल के समान है, इनका सेवन करके जीव काल का अतिथि होता है और अन्तिम परिणाम भी दुःखदायी होता है।

* * * *

जो हिंसा आदि पापों का त्याग नहीं करते वे नरकगामी होते हैं और अनेक बार नाना कष्टों से भरी हुई मूढ योनियों में जन्म लेते हैं।

* * * *

भोगों मे आसक्त, मनुष्य, ससार मे दुखी जीवन व्यतीत करता है। और भोग त्यागी अभोगी, इस ससार मे रहता हुआ भी, अमरता का अनुभव करता है।

* * * *

लोभ अज्ञानियों को ज्ञानी नहीं होने देता है, और घमड कटक बन कर भक्ति मार्ग का रास्ता रोकता है, इसलिए सन्तोष और नम्रता धारण करके जीवन सफल बनाना चाहिये।

* * * *

अत्याचार का डटकर विरोध करना और उसे नष्ट करना, पाप नहीं है, प्रत्युत एक पवित्र कर्त्तव्य है। प्रत्येक सघर्ष के मूल मे पवित्र सकल्प होना चाहिए, फिर कोई पाप नहीं।

* * * *

ओ मानव ! तेरा सत्य तेरे अन्दर है, बाहर नहीं। तू जीवित ही ईश्वर है । अपने आपको जरा कस कर रख। फिर जो चाहेगा, हो जाएगा।

* * * *

मैं बुरे मनुष्यों की खोज में निकला, और सारा ससार ढूंढ डाला तो भी कोई बुरा आदमी नहीं मिला, परन्तु जब मैं ने अपना हृदय देखा तो मैं ने अपने ही को सब से बुरा पाया।

* * * *

उत्तम मनुष्य जन्म का बार बार मिलना अतीव कठिन है, यह यदि निष्फल खो दिया जायगा तो फिर इसका मिलना उसी तरह से कठिन हो जायगा जैसे कि डाल से गिर कर फिर फल डाल पर लगना कठिन होता है।

° ° ° °

सर्व-भक्षिणी मृत्यु अचानक आ जाती है, इसलिए उसके आने के पहले ही परभव के लिए हम को धर्म का सञ्चय करना चाहिए।

° ° ° °

सब सबल की सहायता करते हैं, परन्तु निर्बल का कोई सहायक नहीं होता, देखो हवा जलती हुई अग्नि को द्विगुणा प्रज्वलित कर देती है, परन्तु बेचारे दीपक को बुझा देती है।

° ° ° °

जैसे मत्सगति से पाप की प्रवृत्तियाँ बिना प्रयास ही क्रम हो जाती हैं, इसी तरह दुष्टों की सगति में सुख और शान्ति भी सहज ही में नष्ट हो जाते हैं।

° ° ° °

मनुष्य देह नश्वर है और आयु अल्प है, मोक्ष मार्ग ही स्थिर है, ऐसा समझकर शीघ्र ही भोगों से निवृत्त होना चाहिये।

° ° ° °

मनुष्य काम भोगों से बडी मुश्किल से छुटकारा पाते हैं, परन्तु साधु जन सफल व्यापारी की भाँति सरलता से हो भोगों का त्याग करके, ससार समुद्र से पार हो जाते हैं।

* * * *

जिस प्रकार मृगों के भुण्ड मे से सिंह किसी एक मृग को निर्दयता पूर्वक पकड ले जाता है, उसी प्रकार ससार में से मृत्यु भी प्रत्येक प्राणी को खींच ले जाती है।

* * * *

जिस प्रकार सर्प के मुँह में फँसा हुआ मेंडक मच्छरों को खाता है, उसी प्रकार सदा काल के गाल मे बैठा हुआ यह जीव, भोगों के भोगने की चेष्टा करता है।

* * * *

जो मनुष्य भोगों में आसक्त होकर पाप कर्म करते हैं, वे इस लोक और परलोक दोनो जगह दुख पाते है, उनका जीवन कफ मे फँसी हुई मक्खी के समान है।

* * * *

युवा काल, बुढापे से आक्रान्त है, स्वास्थ्य रोगों से आहत है और जीवन मृत्यु से चाटा हुआ है तो भी इस मनुष्य की तृष्णा शान्त नहीं होती।

* * * *

अपने बडप्पन की झलक किसी को दिखाने का प्रयत्न न करो। शुद्ध प्रेम और स्वार्थ त्याग ये दो बातें चरित्र के प्रधान अग है। इनको अपनाना चाहिये।

° ° ° °

सत्य कोई नाशवान् वस्तु नही है। वह अविनाशी, अमर्त्य और नित्य है। वे लोग भूल करते है, जो कहते हैं, कि हमारा सत्य धर्म अमुक की सगति से नाश हो जायगा, ये सब भ्रान्तियां हैं।

° ° * °

विश्वास रक्खो कि यदि तुम्हारे धर्म की दीवार सत्य के गहरे पाये पर है तो उसे कोई हिला न सकेगा, और यदि वह बाह्य दभ के पाये पर है तो तुम्हारे हजार यत्न करने पर भी टिकी न रहेगी।

° ° ° °

मानव! तेरा अधिकार कर्तव्य करने तक है फल, तक नहीं। तू जितनी चिन्ता फल की रखता है, उतनी कर्तव्य की क्यों नहीं रखता।

° ° ° °

✓मानव जीवन का ध्येय त्याग है, भोग नहीं, श्रेय है, प्रेय नहीं। भोगलिप्सा का आदर्श मनुष्य के लिए सदैव घातक है और रहेगा।

° ° ° °

मानव ही परिश्रम और साधना द्वारा महामानव बनता है। आत्मा ही अपने स्वरूप को प्रकट करके परमात्मा बन जाता है।

* * * *

यदि तू अन्दर की शक्तियों को जागृत करे तो भूमण्डल तेरे एक कदम की सीमा में है। तू चाहे तो घृणा को प्रेम मे, द्वेष को अनुराग मे, अन्धकार को प्रकाश मे, मृत्यु को जीवन मे, नरक को स्वर्ग मे बदल सकता है।

* * * *

श्रद्धाहीन अविश्वासी का मन अन्धकूप है जहाँ साँप, बिच्छू और न मालूम कितने जहरीले कीडे मकौडे पैदा होते रहते हैं। वास्तव में श्रद्धा वह दीपक है जो इन सब जहरीले जन्तुओं को भगा देता है।

* * * *

भक्ति का रहस्य दासता या गुलामी नहीं है। सच्ची भक्ति वह है जहाँ भक्त भगवान् के साथ एकता स्थापित कर लेता है। अपना अस्तित्व मूल उस के अस्तित्व मे मिल जाता है।

* * * *

आज के दु खों, कष्टों और सघर्षों का मूल कारण यह है कि मनुष्य अपना बोझ खुद न उठा कर दूसरो पर डालना चाहता है।

* * * *

निश्छल भाव से, जो अपने अपराध का प्रकाशन करके उस का प्रायश्चित स्वीकार करता है, वह अत्यन्त शुद्ध होता है।

* * * *

अपनी दुष्ट मुट्ठी को तान कर मृत्यु सदा तैयार रहती है। मुझे नहीं मालूम कि वह मेरे शरीर का कब नाश कर दे ऐसा सोचना अनित्य भावना है।

* * * *

जिनके भ्रूभंग मात्र से सारी पृथ्वी कम्पित हो जाती थी वे भी मर गए तो तेरी क्या विसात है अर्थात् तू किस का है और कौन तेरा है। यह अशरण भावना है।

* * * *

अनादि काल से यह जीव निरन्तर संसार में घूम रहा है अभी तक इसे सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई। ऐसा चिन्तन करना सृष्टि भावना है।

* * * *

यह आत्मा अकेला ही संसार में जन्म लेता है, अकेला ही मरता है। अपने कर्मों का फल भी अकेला ही भोगता है ऐसा सोचना एकत्व भावना है।

* * * *

पुत्र, ज्ञाति, धन, इन से आत्मा भिन्न है, फिर इनके नाश होने पर कैसा शोक ! ऐसा सोचना अन्य भावना है।

* * * *

मांस, मज्जा, कफ और मल मूत्र से पूरित देह चमडे से ढका हुआ गन्दगी का पात्र है, ऐसा विचार करना अशुचि भावना है।

* * * *

जिस प्रकार बीजों से तृणों को उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार प्रवृत्ति से कर्मों का निष्पत्ति होती है। इस भावना को आस्रव भावना कहते हैं।

* * * *

आत्मा रूपी जलाशय मे आते हुए पाप के गन्दे प्रवाह का जो रोकती है उसे सम्वर भावना कहते हैं।

* * *

आत्मा के ऊपर इकट्ठे किये कर्म समूहो को जो व्रतादि के द्वारा नाश करे, उसे निर्जरा भावना कहते हैं।

* * * *

दूर गति रूपी पाप के कुएं में डूबते हुए प्राणियों की धर्म ही रक्षा करता है यह विचार करना धर्म भावना कहलाती है।

* * * *

यह लोक नित्य और शाश्वत है, इसका नाश नहीं होता। इसका कर्त्ता भर्त्ता कोई नहीं। लोक के प्रति यह विचार करना, यही लोक भावना है

* * * *

मनुष्य जन्म में, इस आत्मा को दुर्लभ से दुर्लभ जो बोधि-रत्न (सद्ज्ञान) की प्राप्ति होती है।' वही दुर्लभ भावना है।

* * * *

शुभ कर्मों के शुभ ही फल होते हैं और अशुभ कर्मों के अशुभ ही फल होते हैं। अत कर्म रूप ससार मे कर्म से निवृत्ति क्रियाओं द्वारा मोक्ष पद की प्राप्ति करनी चाहिए।

* * *

ज्ञानी के ज्ञान प्राप्त करने का यही सार है, जो किसी भी जीव की हिंसा नही करे। क्यो कि शास्त्रो का सारभूत एक अहिंसा भगवती ही है।

* * * *

सब जीव आयुष्य और सुख को चाहते हैं, दु ख और मृत्यु सब को अप्रिय है। हर एक प्रियजीवी है और जीने की वृत्ति रखते हैं, जीना सब को प्यारा लगता है।

* * * *

अपनी आत्मा के समान पर को जानना, कुशल वृत्तियों का चिंतन करना, शक्ति के अनुसार ही तप करना—ये ही धर्म जानने के उप य है।

* * * *

अन्तर ग और बहिर ग जीवन मे समत्व-योग की साधना का ही प्रचलित नाम धर्म है। अन्दर और बाहर मे जितनी समता (एकरूपता) उतनी शान्ति, और जितनी विषमता, उतनी ही अशान्ति होती है।

* * * *

जब साधक वैराग्य की, आत्म-भाव की ऊचाइयों पर चढा होता है, तब उसे ससार के समस्त भोग-विलास, धन, वैभव, मान-प्रतिष्ठा तुच्छ एव क्षुद्र मालूम होने लगते हैं।

* * * *

मानव-जाति का उत्थान संघर्ष मे नहीं, सहयोग मे है। स्पर्द्धा में नहीं सहकारिता में है। वैमनस्य मे नहीं, प्रेम मे है। हमारा सुन्दर भविष्य आपसी भाईचारे पर निर्भर है।

* * * *

अहिंसा, मानवता की आधार-शिला है, मानवता का उज्ज्वल प्रतीक है। परिवार मे, समाज में, राष्ट्र मे यदि शान्ति का दर्शन करना हो तो अहिंसा का मूल-मन्त्र जपना ही होगा।

* * * *

अहिंसा के पुजारी का कोई शत्रु नहीं है। जो दूसरों के लिए हृदय में प्यार भरकर चला है, उसे सर्वत्र प्यार ही मिलेगा, आदर ही मिलेगा। प्यार को प्यार मिलता है और तिरस्कार को तिरस्कार।

* * * *

इस विशाल पृथ्वी पर एक कोने से दूसरे कोने तक बसे हुए मानव-समूह में जितनी अधिक भ्रातृ-भावना विकसित होगी, उतनी ही शान्ति और कल्याण की अभिवृद्धि होगी।

* * * *

जो स्वय जिन्दा रहेंगे और दूसरो को जिन्दा रहने देंगे, उन के हाथ में आई शक्ति ही विश्व के लिए वरदान होगी। जिस शक्ति के पीछे स्नेह नहीं है, जन कल्याण नहीं है, वह शक्ति रावण की होती है, राम की नहीं।

* * *

दान से लोभ का नाश होता है, लोभ के नाश से सन्तोष होता है और सन्तोष से हिंसा आदि पापों का नाश होता है। फिर शान्ति प्राप्त होती है।

* * * *

कामासक्त व्यक्ति का धन, धर्म और शरीर कुछ भी नहीं है। क्योंकि वह काम रूपी अग्नि मे आसक्त हुआ धन, धर्म और शरीर का हवन ही कर देता है।

* * * *

अज्ञान ही अच्छा है किन्तु दुर्जन की सेवा से विद्या ग्रहण करनी अच्छी नहीं है कारण कि उसकी सगति से पडित भी पापाचरण करने वाले हो जाते हैं।

* * * *

आपत्ति या सकट मे घबराओ नहीं। यह सब मनुष्य के खरेपन को परखने के लिए कसौटी है और यह याद रखना चाहिए कि कसौटी सोने के लिए होती है, लोहे या पीतल के लिए नहीं।

* * * *

ज्ञान के बिना क्रिया व्यर्थ है और क्रिया के बिना ज्ञान व्यर्थ है। इस लिए ज्ञान और क्रिया के मेल से ही शीघ्र कार्यसिद्धि होती है।

* * * *

सज्जनों की सगति करना, गुणो को ग्रहण करना, लोक-निन्दा से डरना, ईश्वर में भक्ति रखना, अपने को वश में करना, यह सज्जन पुरुषों के गुण हैं ।

* * * *

विपत्ति मे धैर्य रखना, सभा मे चतुराई से वोलना, धन पा कर घमण्ड न करना, भलाई करके चुप रहना, दूसरों की भलाई सभा मे कहना, यह सज्जन पुरुषों के लक्षण हैं ।

* * * *

हाथ की शोभा दान से हे, सिर की शोभा वडो को प्रणाम करने से है, मुख की शोभा सच वोलने से है, हृदय की शोभा स्वच्छता से हे, कानों की शोभा शास्त्र के सुनने से होती हे ।

* * * *

जिसमे लोभ हे उसे दूसरे अवगुण की क्या आवश्यकता है ? जो कुटिल है उसे और पाप करने की क्या आवश्यकता हे ? सत्य-वादी को और तप से क्या क्या प्रयोजन है ? जिस का मन शुद्ध है उस को तीर्थ करने की जरूरत नहीं ?

* * * *

जो सज्जन हैं उनको और गुण क्या चाहिए ? यशस्वी को यश से वढ कर दूसरा कौन भूषण हे ? विद्वान् को दूसरे धन की क्या आवश्यकता हे ? जिस का अपयश है उस को और कैसी मृत्यु चाहिए ?

* * * *

अच्छे मनुष्यों को न्याय से प्रीति होती है और वे प्राण जाने के डर से भी बुरे काम नहीं करते। वे दुष्ट जनों से अथवा निर्धन मित्र से, कैसी ही विपत्ति क्यों न पडे, नहीं माँगते और अपने गौरव को ऊँचे पद से गिरने नहीं देते।

* * * *

जीव हिंसा न करना, चोरी से बचना, सच बोलना, समय पर यथाशक्ति दान देना, गुरुओं के साथ नम्रता करना, और शास्त्र के अनुसार विधि पूर्वक काम करना, इन्हीं से मनुष्यों का परम कल्याण है।

* * * *

किसी के भी साथ, शत्रुता करना अपनी आत्मा के साथ शत्रुता करना है। अत सब के साथ मित्रता का बर्ताव करना चाहिए।

* * * *

मनुष्य का उद्धार एव सहार, उसका अपना भला-बुरा आचरण ही करता है, यह एक अमर सत्य है। इसे हमें समझना चाहिए। मनुष्य, अपना शत्रु अपने अन्दर ही क्यों नहीं देखता?

* * * *

अच्छी सगती बुद्धि के अधकार को हरती है, वचनों को सत्य की धारा से सींचती है, मान को बढाती है, पाप को दूर करती है,

चित्त को पसन्न रखती है और चारो ओर यश फैला कर मनुष्यों को क्या क्या लाभ नहीं पहुँचाती ?

* * * *

मानव-जीवन नश्वर है, उसमें भी आयु तो परिमित है, एक मोक्ष-मार्ग ही अविचल है, यह जानकर काम-भोगों से निवृत्त हो जाना चाहिए।

* * * *

जो मनुष्य भोगी है—भोगासक्त है, वही कर्म-मल से लिप्त होता है, अभोगी लिप्त नहीं होता। भोगी ससार में भ्रमण किया करता है और अभोगी ससार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

* * * *

जब तक बुढापा नहीं सताता, जब तक व्याधिया नहीं बढतीं, जब तक इन्द्रिया हीन—अशक्त नही होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

* * * *

महान् कुल मे उत्पन्न हो कर सन्यास ले लेने से तप नहीं हो जाता, असली तप वह है, जिसे दूसरा कोई जानता नहीं तथा जो कीर्ति की इच्छा से नहीं किया जाता।

* * * *

काम-भोग क्षण मात्र सुख देने वाले हैं, तो चिर काल तक दु:ख देने वाले हैं, उन मे सुख बहुत थोडा है। अत्यधिक दु:ख

ही दुःख है। मोक्ष सुख के वे भयकर शत्रु हैं, और अनर्थों की खान है।

*　　*　　*　　*

पुरुष! मानव-जीवन क्षणभगुर है, अत. शीघ्र ही पाप कर्म से निवृत्त हो जा। ससार में आसक्त तथा काम भोगों मे मूर्च्छित असयमी मनुष्य बार बार मोह को प्राप्त होते रहते हैं।

*　　*　　*　　*

मनुष्यों! जागो, जागो! अरे तुम जागते क्यों नहीं? परलोक मे अन्तर्जागरण प्राप्त करना दुर्लभ है। बीती हुई रात्रियाँ कभी लौट कर नहीं आतीं। मानव जीवन पुनर्वार पाना आसान नहीं।

*　　*　　*　　*

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती और लोभ सभी सद्गुणों का नाश कर देता है।

*　　*　　*　　*

ससार मे जितने भी प्राणी है, सब अपने कृत कर्मों के कारण ही दुःखी होते हैं। अच्छा या बुरा-जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।

*　　*　　*　　*

मनुष्य होना उतनी बडी चीज नहीं, बडी चीज है, मनुष्यता का होना। मनुष्य हो कर जो मनुष्यता प्राप्त करते हैं, उन्हीं का

जीवन वरदान-रूप है। केवल नर का आकार तो बन्दरों को भी प्राप्त होता है।

* * * *

कषायों का, इन्द्रियों के भोगो का और आहार का जहाँ त्याग किया जाये, वहीं सच्चा उपवास है। अगर कषाय-विषय का त्याग नहीं हुआ है, और केवल खाने पीने का ही त्याग किया गया है, तो उसे लंघन कह सकते हैं, उपवास नहीं कह सकते।

* * * *

सच्चा यानी आगे बढता है। उसके मार्ग मे चाहे फूल बिछे हों, या शूल गडे हों। वह अपने सकल्प का कभी परित्याग नही कर सकता। पथ सकटों को देख कर वापिस लौटना, वीरत्व, नहीं।

* * * *

विद्या वही है जो हमे ससार से मुक्ति दिलाने वाली हो, हमें स्वतन्त्र करने वाली हो, हमारे बन्धनो को तोड देने वाली हो।

* * * *

सुख, शान्ति और आनन्द की खोज मे चचल बना क्यों इधर उधर भटक रहा है? खिन्न और उदास क्यों बना है? शान्ति, सुख और आनन्द की अक्षय निधि तेरे अन्दर ही है। उच्च विचार और उच्च आचार से प्रगट होता है।

* * * *

जब साधक वैराग्य की, आत्म-सम्मान की ऊँचाई पर चढ़ा होता है, तो ससार के सब वैभव, मान, प्रतिष्ठा, भोग, विलास, तुच्छ एव क्षुद्र मालूम होते हैं।

• • • •

सर्व प्रथम मन को ही पवित्र बनाना चाहिए। आचार का मूल स्रोत विचार है, और विचार की जन्म भूमि मन है। मन को शुभ सकल्पों की सुगन्ध से भरो, यदि बाहर के जीवन में आचार की सुगन्ध को महकाना है।

• • • •

आत्मानुभूति कोई बाहर से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। वह तो अन्दर ही मिलेगी, एक मात्र अन्दर ही। शरीर, इन्द्रियाँ और मन की वासना क खोल को तोड कर फेंक दो, आत्मा-नुभूति का प्रकाश अपने आप जगमगा उठेगा।

• • • •

क्रोध को क्षमा से जीतो, अभिमान को नम्रता से जीतो, माया को सरलता से जीतो और लोभ को सन्तोष से जीतो, तब ही आत्मकल्याण होगा।

• • • •

अकेले बैठ कर खाना, महापाप है—गुनाह है—दुनिया में भले ही किसी और की मुक्ति हो जाय, परन्तु बाँट कर नहीं खाने वाले की मुक्ति कभी नहीं हो सकती।

• • • •

सत्य, दया, शान्ति और अहिंसा ये धर्म के चार पाद हैं। अच्छी तरह से अपने विचार और व्यवहार की परीक्षा कर के देखो—सत्य, दया, शान्ति और अहिंसा का आश्रय तुमने कहा तक लिया है।

* * * *

सत्य से बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है, झूठ से बढकर और कोई पाप नहीं है। सत्य ही धर्म का आधार है, अतः सत्य का कभी लोप न करें।

* * * *

मन को निरन्तर अभ्यास से काबू मे किया जा सकता है। तुम उसे सदैव भगवान् के ध्यान मे लगाये रक्खो। यदि तुम अपने प्रयत्नों को शिथिल कर दोगे तो निकम्मे विचार प्रवेश कर जायेंगे।

* * * *

जब तक मनुष्य द्रव्य के उपार्जन मे लगा रहता है, तभी तक वह अपने परिवार मे प्रिय होता है। इसके अनन्तर शरीर जीर्ण हो जाने पर घर मे कोई बात भी नहीं पूछता।

* * * *

जैसे अति निर्मल जल भी कीचड के सयोग से मलिन हो जाता है, वैसे ही दुर्जन के सग से सज्जन का चरित्र भी दूषित हो जाता है।

* * * *

सज्जनों के साथ रहना, सग करना, मित्रता करनी, अगर विवाद भी करना हो तो सज्जनों से ही करना चाहिये। असज्जन से तो कोई सम्पर्क ही नहीं रखना चाहिये। क्योंकि दुर्जन की सगति से दु ख प्राप्त होता है।

*   *   *   *

दुर्जन मनुष्य विद्वान् हो, तो भी उसका सग छोड देना चाहिये। मणि से भूषित साँप क्या भयङ्कर नहीं होता? कुसग से क्रमश. काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश हो कर अन्त में मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है।

*   *   *   *

प्रलोभनमय ससार के यश-मान, धन-दौलत और सुखैश्वर्य आदि की तृष्णारज्जु को काट डालो, जाति, विद्या, रूप, यौवन, महत्त्व और प्रभुत्व आदि के अभिमान को छोड कर स्थावर-जगम सब जीवों के प्रति समदृष्टि भाव रखो।

*   *   *   *

जब तक तुम्हारे मन में ससार बसा है, तभी तक भगवान तुम से दूर हैं। ससार की तरफ से तुम्हारी दौड रुकते ही तुम ईश्वर की ओर, जाओगे जिस से तुम्हारे अन्त करण में अनन्य प्रकाश होगा।

*   *   *   *

सदा विनय और प्रेम पूर्वक प्रभु का भजन करो, सेवा और सम्मानपूर्वक साधु जनों का सत्सग करो, अज्ञानी लोगों के

साथ दयालु हृदय और नम्र वाणी से तथा नौकरों और घर के लोगों के साथ सज्जनता तथा सुशीलता पूर्वक वर्ताव करो।

* * * *

मतवाले हाथी के मद को चूर्ण करने वाले, सिंह को भी पछाड़ने की शक्ति वाले बहुत मिल जायेंगे, मगर कामदेव के मद को चूर्ण करने वाला कोई विरला ही होता है। क्योंकि इसे वश करना बहुत कठिन है।

* * * *

इन तीन बातों को अपना परम शत्रु समझो—धन का लोभ, लोगों से मान पाने की लालसा और लोकप्रिय होने की आकांक्षा, इनको छोड़कर प्रभुभक्ति में चित्त लगाने से ही आत्म उन्नति होगी।

* * * *

मुरदा, रोगी, आलसी और स्वस्थ यह चार प्रकार के मन होते हैं। धर्म-द्रोही का मन मुरदा, पापी का मन रोगी, लोभी व स्वार्थी का मन आलसी और भजन-साधन में तत्पर व्यक्ति का मन स्वस्थ होता है।

* * * *

धर्म का सेवन करो, यम-नियम तथा देव गुरु का आश्रय लो। यह शरीर पानी के बुलबुले के समान है, आज है तो कल नहीं। क्या पता किस समय इसका नाश हो जाय।

* * * *

निष्कपट भाव से शुभ कर्म करना, नि स्वार्थ भाव से बोलना, बदले की आशा के बिना दान-उपकार करना, कृपणता को छोड कर धन-सचय करना चाहिये। यह बातें मानव को ग्रहण करने योग्य हैं।

* * * *

सावधान रहना, यह दुनियाँ शैतान की दुकान है। भूल-कर भी इस दुकान की किसी चीज़ पर मन न चलाना, नहीं तो शैतान पीछे पडकर उस चीज़ के बदले मे तुम्हारा धर्म रूपी धन छीन लेगा।

* * * *

दूसरों के दोष हरकोई देखता है, मगर अपने दोष कोई नहीं देखता। अपना व्यवहार सभी को अच्छा मालूम होता है किन्तु जो मनुष्य सब हालत में अपने को छोटा समझता है, वह अपने दोष भी देख सकता है।

* * * *

ससार और शरीर की अनित्यता को समझ कर यह निश्चय कर ले कि शरीर नाशवान् है और ससार मेरा नहीं है। इसका नाम विवेक है। जहाँ विवेक बल होगा वहाँ निर्वासना अवश्य आ जायगी।

* * * *

मनुष्य को अपना दोष स्वीकार करने मे और क्षमा माँगन में सकाच क्यों होता है। विचार करने से मालूम होगा कि

उसको दोषी बने रहने मे उतना दु ख नहीं है जितना कि दोषी कहलाने मे है। इस भावना से दोषो का पोषण होता रहता है और अन्त करण शुद्ध नहीं होता।

* * * *

भोगों की चाह का उत्पन्न होना और उनका पूर्ण होना-इसी को मनुष्य सुख मान लेता है और यही सब से बड़ा दोष है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि सब प्रकार के दोष भोग वासना से उत्पन्न और पुष्ट होते रहते हैं।

* * * *

जुल्म और निर्दयता पशुत्व है, बेरहमी का बर्ताव करना मनुष्य को किसी प्रकार भी शोभा नहीं देता। जुल्म करना तो उन दानवों का दुष्कर्म है, जिन्हे उचित अनुचित भलाई-बुराई का विवेक नहीं होता। आप मानव हैं।

* * * *

जो काम किया जाय, नियम से होना चाहिये। कुछ दिन किया, फिर छोड दिया-इससे कुछ फायदा नहीं। नियम से भजन इत्यादि जो किया जाता है, बहुत लाभदायक हुआ करता है।

* * * *

किसी को नीचा दिखाने की चाह या चेष्टा न करो, किसी की अवनति या पतन मे प्रसन्न न होओ, न किसी की अवनति या

पतन चाहो ही । किसी की निन्दा-चुगली, दोष-प्रकाशन न करो।

* * * *

तप तीन प्रकार का होता है, जैसे कि, तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। तामसी तप से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, राजसी तप से पुण्योपार्जन और सात्त्विक तप से कर्मों की निर्जरा होती है।

* * * *

सयम के बिना कोई भी तप बाल तप (अज्ञान तप) कहलाता है। बाल तप से परलोक का आराधक नहीं बन सकता है। और अहिंसा के बिना सयम होता है, जैसे नमक के बिना मसालेदार दाल-शाक।

* * * *

जो मनुष्य बिना धर्माचरण किये परलोक जाता है, वह वहाँ नहीं विविध प्रकार की आधि-व्याधियों से पीडित होकर अत्यन्त दुखी होता है। इसलिए धर्माचरण करना चाहिए।

* * * *

जो रात और दिन एक बार बीत जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं आते, जो मनुष्य धर्म करता है, उसके दिन-रात सफल जाते हैं, और अधर्म करने वाले के बिल्कुल निष्फल जाते हैं।

* * * *

जब तक बुढापा नहीं सताता, जब तक व्याधिया नहीं बढतीं,

जब तक इन्द्रिया हीन (अशक्त) नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए-बाद में कुछ नहीं होने का।

* * * *

जो मनुष्य प्राणियों की स्वय हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है, वह ससार मे अपने लिए वैर को ही बढाता है।

* * * *

भाषा के गुण तथा दोषों को भली भॉति जान कर दूषित भाषा को सदा के लिए छोड देना चाहिए, और बुद्धिमान् साधक सदा हितकारी मधुर भाषा बोले।

* * * *

धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम रस है। विनय के द्वारा ही मनुष्य बडी जल्दी शास्त्र-ज्ञान तथा कीर्ति-सपादन करता है अन्त मे मोक्ष भी इसी के द्वारा प्राप्त होता है।

* * * *

मानव जीवन नश्वर है, उस मे भी अपनी आयु तो बहुत परिमित है, एकमात्र मोक्ष-मार्ग ही अविचल है, यह जान कर काम भोगो से निवृत हो जाना चाहिए।

* * * *

मूर्ख मनुष्य धन, पशु और जाति वालों को अपनो शरण मानता है और समझता है कि ये मेरे हें और मैं उनका हूँ।

परन्तु इनमें से कोई भी आपत्ति काल मे त्राण तथा शरण को देने वाला नहीं है।

* * * *

ससार में जितने भी प्राणी हैं, वे सब अपने कृत कर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म किया है उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।

* * * *

यह ससार-समुद्र अत्यन्त गहरा है, इसका पार पाना कठिन है। यह दु खमयी लहरों और मोहमयी भाँति भाँति की तरङ्गो से भरा है। इसको पार करने के लिए धर्म रूपी जहाज़ में सवार होना चाहिए।

* * * *

काम, क्रोध, लोभ, मोह, असतोष, निर्दयता, छल कपट, अभिमान, शोक, असत्‌वचन, ईर्ष्या और निन्दा-मनुष्यों में रहने वाले ये बारह दोष सदा ही त्याग देने योग्य हैं।

* * * *

वैर रखने वाला मनुष्य हमेशा वैर ही किया करता है, वह वैर मे ही आनन्द पाता है। वैर और हिंसा पाप कर्म को उत्पन्न करने वाले हैं, अन्त मे दु ख पहुँचाने वाले हैं।

* * * *

मनुष्य सोचता कुछ है और करता कुछ है अर्थात् उसके

विचार और आचार मे बहुत अन्तर रहता है—इसीलिये वह दु खी है। उसके आचार में छल, कपट, लोभ, मोह, वासना और दया-हीनता सर्वदा खेलती रहती है।

* * * *

सद्गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के ससर्ग से दूर रहना, एकाग्रचित्त से धर्मशास्त्रों का अभ्यास करना और उनके गम्भीर अर्थ का चिन्तन करना, और चित्त में धृति रूप अटल शान्ति प्राप्त करना, यह नि श्रेय का मार्ग है।

* * * *

सभी प्रकार के आकर्षणों से चित्त को अलिप्त रख कर केवल आत्मकल्याण के मार्ग को दृष्टि मे रखने वाला और उसे प्राप्त करने का निर तर प्रयत्नशील मनुष्य ही सफलता प्राप्त कर सकता है।

* * * *

ससार मे प्रत्येक बात सोच समझ कर ही कहनी चाहिये। बिना सोचे जो कह देता है उसे बडी आपत्ति उठानी पडती है। इसलिए पहले तोलो फिर बोलो।

* * * *

सज्जन व्यक्तियों की सगति से मनुष्य की उन्नति होती है और दुर्गुणों का समावेश नही हो पाता। दुष्टों की सगति से दुर्गुण उत्पन्न होते हैं और चित्त अशान्त रहता है।

* * * *

सत्य है ससार में सभी का प्रेम स्वार्थमय होता है, किसी का निस्वार्थ प्रेम नहीं होता। जिसका निस्वार्थ प्रेम होता है, वह मनुष्य मनुष्य नहीं देवता है।

* * * *

मनुष्य उत्तरोत्तर यदि बढता जाय तो अन्त मे उसे कुछ न कुछ तो मिल ही जाता है परन्तु भिन्न-भिन्न रास्तों पर चलने वाला मनुष्य कुछ नहीं प्राप्त कर सकता है।

* * * *

बडो की शिक्षाओं का फल भी वडा ही होता है। उन शिक्षाओं का अनुकरण करने से प्रत्येक मनुष्य आपत्तियों के बीच में से रास्ता निकालता हुआ अपने जीवन को सुखमय बना सकता है।

* * * *

मनुष्य को चाहिए कि तप को क्रोध से, सम्पत्ति को डाह से, विद्या को मान अपमान मे और अपने को प्रमाद से बचावे। क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बडा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढ कर हित का साधन है।

* * * *

जैसे वन में नयी नयी घास की खोज मे विचरते हुए अतृप्त पशु को उस की घात मे लगा हुआ व्याघ्र सहसा आकर दबोच

लेता है, उसी प्रकार भोगों मे लगे हुए अतृप्त मनुष्य को मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिए इस दु.ख से छुटकारा पाने का उपाय अवश्य सोचना चाहिए।

* * * *

तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है, सतोष में ही परम सुख है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष सतोप को ही श्रेष्ठ मानते हैं। यह जवानी सुन्दरता, जीवन, रत्नों के ढेर, ऐश्वर्य और प्रिय वस्तुओं तथा प्राणियो का समागम—सभी अनित्य हैं।

* * * *

धर्म का सार सुनो और उसे धारण करो—जो बात अपने को प्रतिकूल जान पडे, उसे दूसरों के लिए भी काम मे न लाओ। जो पराई स्त्री को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सम्पूर्ण भूतों को अपनी आत्मा के समान जानता है, वही ज्ञानी है।

* * * *

दूसरे के अधिकार या कर्त्तव्य के अनुसार चलने का प्रयत्न न करो। तुम्हारी योग्यता ने जिस अधिकार पर तुम्हे नियुक्त किया है, उसी के अनुसार वर्ताव करो। हाँ, उन्नति करने की चेष्टा अवश्य करते रहो।

* * * *

उद्योग करने से दरिद्रता नष्ट होती है, जाप करने से पाप

नहीं रहता, मौन रखने से कलह नहीं होता और सावधान रहने से सङ्कट नहीं आता।

* * * *

शान्ति के समान दूसरा तप नहीं, संतोष के बराबर दूसरा सुख नहीं, तृष्णा के तुल्य दूसरी व्याधि नहीं, और दया से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं।

* * * *

मनुष्य को जीवन में अनेक कार्य करने हैं। उन मे से पहला तथा उपयोगी कार्य अपने चरित्र को सुधारना है। कार्य की सफलता के लिए विचार और स्वभाव को पवित्र रखने की पूर्ण आवश्यकता है।

* * * *

सर्वदा मन में शुभ विचार, वाणी मे शुभ उच्चार और आत्मा मे शुभ आचार को धारण करो। ये तीन बातें ही केवल ऐसी हैं जो मनुष्य को सभ्य और योग्य बनाती हैं।

* * * *

जिन मे न विद्या है, न शील है, न गुण है, न धर्म ही है, वे मृत्यु लोक मे पृथ्वी के भार बने हुए मनुष्य रूप से मानो पशु ही घूमते फिरते हैं।

* * * *

सत्सगति बुद्धि की जडता को हरती है, वाणी मे सत्य का

संञ्चार करती है, सम्मान बढाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को आनन्दित करती है और समस्त दिशाओ मे कीर्ति का विस्तार करती है।

* * * *

हमने भोगों को नही भोगा, भोगों ने ही हमें भोग लिया। हमने तप नहीं किया, स्वय ही तप्त हो गए। काल व्यतीत नहीं हुआ, हम ही व्यतीत हो गए और मेरी तृष्णा नहीं जीर्ण हुई, हम ही जीर्ण हो गए।

* * * *

दरिद्र कौन हे? जिसकी तृष्णा बढी हुई है। श्रीमात् (धनी) कोन है? जो पूर्ण सतोषी है। जाता ही कौन मर चुका है? उद्यम-हीन। सत कौन है? जो समस्त विपयों से विरक्त है, मोह रहितहै।

* * * *

फाँसी क्या है? ममता और अभिमान। मदिरा की भाँति मोहित कौन करती है? नारी (कामासक्ति)। महान् अन्धा कौन है? कामातुर। मृत्यु क्या हे? अपना अपयश।

* * * *

गुरु कौन है? जो हित का उपदेश करता है। शिष्य कौन है? जो गुरु का भक्त है। लम्बा रोग क्या है? भव-रोग। उस के मिटाने की दवा क्या हे? असत्-सत् का विचार।

* * * *

भूषणों मे उत्तम भूषण क्या है ? सच्चरित्रता । परम ती
क्या है ? अपना विशुद्ध मन । कौन वस्तु हेय है ? कामिनी
काञ्चन । सदा क्या सुनना चाहिए ? गुरु का उपदेश औ
सर्वज्ञ वाणी ।

* * * *

वीरों मे महावीर कौन है ? जो काम वाण से पीडित न
होता । समतावान्, धीर और प्राज्ञ कौन है ? जो ललना कटाक्ष
मोहित नहीं होता । विप का भी विप क्या है ? समस्त विपय
सदा दु खी कौन है ? विपयानुरागी ।

* * * *

शत्रुओं में महा शत्रु कौन है ? काम, क्रोध, असत्य, लो
तृष्णा । विषय भोग से तृप्त कौन नहीं होती ? कामना । दु
का कारण क्या है ? ममता । जगत् को किस ने जीता है
जिस ने मन को जीत लिया ।

* * * *

कमल पत्र पर स्थित जल की तरह चञ्चल क्या है ? यौव
धन और आयु । चन्द्र किरणों के समान निर्मल कौन है ? स
महात्मा । मार्ग का पाथेय क्या है ? धर्म । विप क्या है ? गु
जनों (बडों) का अपमान ।

* * * *

अन्धा कौन है ? जो अकर्तव्य मे लगा है। बहिरा कौन है ? जो हित की बात नहीं सुनता। गूँगा कौन है ? जो समय पर प्रिय वचन बोलना नही जानता। प्राणियो का ज्वर क्या है ? चिन्ता।

*　　*　　*　　*

एक आदमी जानता है, पर करता नहीं। दूसरा करता है, पर जानता नही। ये दोनो ही मोक्ष नहीं पा सकते। जो जानता है, (कि क्या करना) और (जो करना है) वह करता है, वही मोक्ष पाता है।

*　　*　　*　　*

अपने शत्रुओं से प्यार करो, और जो तुम्हारा अनिष्ट चाहे, उन्हें आशीर्वाद दो, जो तुम से घृणा करें, उनका मगल करो और जो तुम्हारी निन्दा अथवा तुम से द्वेष करें और तुम्हे सतायें उनके लिए प्रभु से प्रार्थना करो।

*　　*　　*　　*

किसी से विरोध नहीं रखना, सबके साथ मधुर वचन बोलना। विषय और तृष्णा का परित्याग करना, अपनी देह को अनित्य समझना। किसी के ऊपर क्रोध नहीं करना।

*　　*　　*　　*

सच बोलो, दलबदी छोडकर सत्य निष्ठ बनो। पर निन्दा का परित्याग करो। दूसरे के दोष की कोई बात कहना ही निन्दा नहीं है, दूसरे को छोटा बताने की चेष्टा ही पर निन्दा है।

*　　*　　*　　*

क्रोध आने पर मौन रहो। जिस के प्रति क्रोध आया है, उसके सामने से हट जाओ। किसी के कुछ कहने पर अथवा अन्य किसी कारण से क्रोध के लक्षण दीखने पर अलग जा बैठो और प्रभु कीर्तन करो।

* * * *

अभिमान का नाश कैसे हो ? अपने को सब की अपेक्षा हीन समझने पर। मन मे अभिमान का अणुमात्र भी प्रवेश हो जाने पर बडे बडे योगियों का भी पतन हो जाता है। अभिमान भयानक शत्रु है।

* * * *

त्याग निश्चय ही आपके बल को बढा देता है, आपकी शक्तियों को कई गुना कर देता है, और पराक्रम को दृढ कर देता है। वह आपकी चिन्ताएँ और भय हर लेगा। त्याग से ही जीवन की उन्नति होती है।

* * * *

जब तक मनुष्य के ऊपर दु ख नहीं आता तभी तक उसके लिए उपाय कर लेना चाहिए कि दु ख आने न पावे। यदि आ ही जाय तो उस को धैर्य के साथ छाती ठोंक कर सहन करना चाहिये।

* * * *

जो मनुष्य अशुद्ध दर्शन से अपनी आँखों को और दूसरे भोगों से इन्द्रियो को बचाता है, नित्य ध्यान योग से हृदय को निर्मल रख कर और स्वधर्म (आत्मा का धर्म) के पालन से अपने चरित्र को शुद्ध करता है, उसके ज्ञान मे कमी नही आती।

* * * *

जैसे नाव चारों ओर पानी से घिरी रहती हे, फिर भी जल उसमें प्रवेश नहीं कर सकता, उसी प्रकार ससार की घोर वासनाओं के बीच मे रहते हुए भी सत जन अलिप्त रहते हैं। जिन्होंने इन्द्रियों को वश मे कर लिया है।

* * * *

जवानी मे मौज करना और बुढापा आने पर माला ले कर भगवान् को भजना, आम खाकर गुठली का दान करने जैसा है, अत जवानी से ही प्रभु की भक्ति करनी चाहिये।

* * * *

समस्त इन्द्रियो को अच्छी तरह समाहित करते हुए पापों से अपनी आत्मा की निरन्तर रक्षा करते रहना चाहिए। पापों से अरक्षित आत्मा ससार में भटका करती है, और सुरक्षित आत्मा सब दु.खो से मुक्त हो जाती हे।

* * * *

मनुष्यो। जागो, जागो, अरे तुम क्यों नहीं जागते? परलोक

में अन्तर्जागरण प्राप्त होना दुर्लभ है । बीती हुई रात्रि कभी लौट कर नहीं आती । मानव-जीवन पुनर्वार पाना आसा नहीं ।

* * * *

जो प्राणी-मात्र को आत्मवत् समझता है, अपने-परा सब को समान दृष्टि से देखता है, निराश्रव होकर आत्मा क दमन करता है, वह पाप-कर्म से लिप्त नहीं होता ।

* * * *

भावना-योग से जिसकी अन्तरात्मा शुद्ध हो गई है, वह पुरु सब दु खों से छुटकारा पा जाता है, जैसे तीर भूमि को पाक नाव विश्राम करती है ।

* * * *

अज्ञानी मनुष्य भूत और भविष्य को भूल जाता है । व इस बात पर भी विचार नहीं करता कि इस आत्मा को संसा में क्यों भटकना पड़ता है, और भविष्य में क्या दशा होगी ।

* * * *

विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह संसार-भ्रमण के कारर दुष्कर्मपाशों को भली-भाँति समझ कर अपने आप स्वतन्त्र रू से सत्य की खोज करे, और सब जावों पर मैत्री भाव रखे ।

* * * *

मनोरम काम-भोगो का मिलना सुलभ है, स्वर्ग का वैभव ाना भी सहज है, पुत्र मित्र आदि का सयोग भी सुलभ है, रन्तु एक धर्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है।

* * * *

ससार में जैसे सुमेरु से ऊँची और आकाश से विशाल कोई सरी चीज नही हैं, इसी प्रकार यह निश्चय समझो कि अखिल वश्व में अहिंसा से वढ कर कोई धर्म नहीं है।

* * * *

लोहे के काटे-तीर तो थोडी देर तक ही दु ख देते हैं, और ह भी शरीर से निकाले जा सकते हैं। किन्तु वाणी से कहे ए तीक्ष्ण वचन के तीर वैर विरोध की परम्परा को बढाकर य को उत्पन्न करते हैं, और जीवन पर्यन्त कटु-वचन का हृदय निकलना वडा ही कठिन है।

* * * *

आचरण-हीन पुरुष को ढेरों शास्त्रों का ज्ञान भी कुछ लाभ हीं पहुँचा सकता। क्या लाखों करोडों जलते हुए दीपक अन्धे के देखने में सहायक हो सकते हैं?

* * * *

जिसने प्रथमावस्था में विद्या उपार्जन नहीं की द्वितीयावस्था में धन प्राप्त नहीं किया और तृतीय अवस्था में धर्म नहीं किया,

वह चौथी अर्थात् चरम अवस्था मे क्या कर सकता है?

* * * *

यदि कल्याण की अभिलाषा है तब विषयों को विषवत् त्यागो। क्षमा, मार्दव, आर्जव, दया, सत्य को अमृत की तरह सेवन करो। इस जीव का वैरी काम है उसे त्यागो। जो आत्मा में दोष हों उनको त्यागो। सयमी जीवन बनाना चाहिये।

* * * *

जिसका प्रथम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' है, जिसके ऊपर आधा रेफ तथा चन्द्र बिन्दु विराजमान है ऐसे 'अर्हं' को जो सच्चे रूप मे जान लेता है, वह ससार के बन्धन को काट कर मोक्ष प्राप्त करता है।

* * * *

यदि तुम सदा चैन से ही रहना चाहते हो, अखण्ड शान्ति चाहते हो तो कोई चाह (इच्छा) न उठने दो, इच्छाओं का त्याग करते रहो। जिसमे कोई भी इच्छा नहीं दिखाई देती वह मुक्त आत्मा है।

* * * *

जिस प्रकार सूखी लकडी अग्नि में शीघ्रता से जलती है लेकिन गीली नहीं। उसी प्रकार निर्दोष जीवन में सन्त-सगति का तुरन्त प्रभाव पडता है, लेकिन सदोष, पाप पङ्किल जीवन में क्रमश सुधार होते-होते कुछ समय लग जाता है।

* * * *

अपनी दुर्बलता दूर करना चाहते हो तो सासारिक वस्तुओ था व्यक्तियो के ऊपर निर्भर न रहो, क्योंकि जितना अधिक म परावलम्बन लोगे उतनी ही अधिक दुर्बलता बढेगी, इसीलिए वावलम्बी हो कर सत्यावलम्बी बनो।

* * * *

कर्तव्य पालन का उल्लास, शुभ कर्म करने की आवश्यकता केसी पुण्यवान बुद्धिमान् व्यक्ति मे ही होती है। अकर्तव्य से शुभ कर्म मे जो डरता है वही मानव है, जो नहीं डरता वह ासुरी प्रकृति का जीव है, और जो कभी कर्तव्य धर्म को, शुभ र्म को जानता ही नहीं वह पशु-प्रकृति का प्राणी है।

* * * *

ससार में जितन दु ख हैं वे अविवेक के कारण ही हैं। यत्न से दु ख दब जाते है किन्तु मिटते नहीं। तुम्हें दु खों को ाना है तो प्रहत्न करो, मिटना है तो सद्विवेक प्राप्त करो गौर सत्य के सम्मुख हो जाओ।

* * * *

मानमिक विचारों मे से विषय विकार विषवत् अलग कर रो क्योंकि विचारों का विषयों की ओर बढना ही तो विनाश पथ में जाना है। नाशवान् पदार्थों या किसी भी क्षेत्र के विनाशी, परिवर्तनशील सुखों मे अन्ध आसक्ति ही पतन का हेतु है ।

* * * *

वह चौथी अर्थात् चरम अवस्था में क्या कर सकता है।

• • • •

यदि कल्याण की अभिलाषा है तब विषयों को विष
त्यागो। क्षमा, मार्दव, आर्जव, दया, सत्य को अमृत की त
सेवन करो। इस जीव का वैरी काम है उसे त्यागो। जो आ
में दोष हों उनको त्यागो। संयमी जीवन बनाना चाहिये।

• • • •

जिसका प्रथम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' है, जि
ऊपर आधा रेफ तथा चन्द्र बिन्दु विराजमान है ऐसे 'अर्हं'
जो सच्चे रूप में जान लेता है, वह संसार के बन्धन को
कर मोक्ष प्राप्त करता है।

• • • •

यदि तुम सदा चैन में ही रहना चाहते हो, अखण्ड शा
चाहते हो तो कोई चाह (इच्छाया) न उठने दो, इच्छाओं
त्याग करते रहो। जिसमें कोई भी इच्छया नहीं दिखाई देती
मुक्त आत्मा है।

• • • •

जिस प्रकार सूखी लकड़ी अग्नि में शीघ्रता से जलती
लेकिन गीली नहीं। उसी प्रकार निर्दोष जीवन में सन्त-संगति
तुरन्त प्रभाव पड़ता है, लेकिन सदोष, पाप पङ्किल जीवन
क्रमश सुधार होते-होते कुछ समय लग जाता है।

• • • •

अपनी दुर्बलता दूर करना चाहते हो तो सासारिक वस्तुओं तथा व्यक्तियों के ऊपर निर्भर न रहो, क्योंकि जितना अधिक तुम परावलम्बन लोगे उतनी ही अधिक दुर्बलता वढेगी, इसीलिए स्वावलम्बी हो कर सत्यावलम्बी वनो।

* * * *

कर्तव्य पालन का उल्लास, शुभ कर्म करने की आवश्यकता केसी पुण्यवान बुद्धिमान् व्यक्ति मे ही होती है। अकर्तव्य से अशुभ कर्म से जो डरता है वही मानव है, जो नही डरता वह आसुरी प्रकृति का जीव है, और जो कभी कर्तव्य धर्म को, शुभ कर्म को जानता ही नहीं वह पशु-प्रकृति का प्राणी है।

* * * *

ससार में जितने दु ख हें वे अविवेक के कारण ही हे। यत्न से दु ख दव जाते हैं किन्तु मिटते नही। तुम्हे दु खों को दवाना है तो प्रयत्न करो, मिटना हे तो सद्विवेक प्राप्त करो और सत्य के सम्मुख हो जाओ।

* * * *

मानसिक विचारों मे से विषय विकार विषवत् अलग कर क्योंकि विचारों का विषयो की ओर वढना ही तो विनाश पथ जाना है। नाशवान् पदार्थों या किसी भी क्षेत्र के विनाशी, परिवर्तनशील सुखो में अन्ध आसक्ति ही पतन का हेतु है।

* * * *

यदि तुम धन के रागी हो तो वैराग्य होने के लिए विवेक दृष्टि से अनुभव करो कि यह धन भी कितनी असार वस्तु है। यह धन अविवेकी मनुष्य को प्राय अभिमानी बना देता है। यह नाना प्रकार के व्यसन विलासिता मे बाँध देता है।

•   •   •   •

यह भी ध्यान रहे कि बुद्धि को छोटी-छोटी कामनाओं, इच्छाओं, आशाओं की पूर्ति मे खर्च करते रहने से कभी परितुष्टि तथा शान्ति नहीं मिलती। जिस बुद्धि की शक्ति को विवेकहीन मनुष्य सासारिक भोग सुखो मे खर्च करते हैं, उसी बौद्धिक शक्ति से विवेकी पुरुष परमात्म मार्ग प्राप्त करते है।

•   •   •   •

ससार मे तृष्णा ही मनुष्य के पतन का तल है और त्याग के बल से सद्गति के द्वारा परम शान्ति को प्राप्त कर लेना ही उत्थान का सर्वोच्च शिखर है।

•   •   •   •

कोई भी मनुष्य किसी भी जाति का हो, किसी भी देश का हो, किसी भी वर्णाश्रम में हो, केवल पवित्र ज्ञान के द्वारा, पवित्र भाव के द्वारा तदनुसार शुभ कर्मों द्वारा ही पवित्र हो सकता है।

•   •   •   •

जो सत्य की ओर, शान्ति की ओर, अमृतत्त्व की ओर ले

जाते है, वे पवित्र भाव हैं। इसी प्रकार जो पाप से बचा कर पुण्य की ओर, दुःख से छुड़ा कर सुख की ओर, बन्धन से छुड़ा कर मुक्ति की ओर ले जाते है, वे शुभ कर्म हैं।

* * * *

ऐश्वर्य को सुन्दर बनाने वाला भूषण सज्जनता है, वीरता का भूषण वाक्य-सयम है, ज्ञान का भूषण शान्ति, कुल का भूषण विनय, धन का भूषण सुपात्र को दान, तप का भूषण क्रोध न करना, बलवान् का भूषण क्षमा और धर्म का भूषण निष्कामता है। इस प्रकार प्रत्येक की सुन्दरता का कोई न कोई कारण है, परन्तु सुशीलता सब को सुन्दर बनाने वाला भूषण है।

* * * *

जो दुःखियों के दुःख से परितप्त होकर परोपकार मे रत है और आप मे ही जो शीतल है, वही बुद्धिमान् पुरुष सौभाग्यशाली है। वास्तव मे जीवन को वही समझता है, जो सभी से प्रेम करता है और पर-हितार्थ दान करता है।

* * * *

जिसको अपने लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है, वही दूसरों के लिए सब कुछ कर पाता है। इस तरह के पुरुष ही मानव जाति के सच्चे हितैषी होते हैं। उन्हीं का अनुशासन मानव-समाज स्वीकार करता है।

* * * *

सेवा करते हुए अशुद्ध वचन, इन्द्रियों का असंयम, मनोविकार, निर्दयता और अपवित्रता से सदा बचते रहो। जिसमें विवेक और सत्य प्रेम जागृत रहता है, वही सच्ची सेवा करता है।

* * * *

उदार होकर धन के द्वारा भोगी होना अच्छा है, लेकिन कृपण होकर धन का सञ्चय करते हुए कठोर रहना अच्छा नहीं, क्योंकि उदार होने के कारण मनुष्य पुण्य की वृद्धि कर सकता है, कृपण, कठोर व्यक्ति धन भले ही बढ़ा ले, किन्तु पुण्य नहीं बढ़ा सकता।

* * * *

कल्याण का पथ निर्मल अभिप्राय है। इस आत्मा ने अनादिकाल में अपनी सेवा नहीं की केवल पर पदार्थों के संग्रह में ही अपने प्रिय जीवन को भुला दिया। भगवान अरहन्त का उपदेश है "यदि अपना कल्याण चाहते हो तो पर पदार्थों से आत्मीयता छोड़ो।

* * * *

अनादि मोह के वशीभूत होकर हमने निज को जाना ही नहीं, कल्याण किसका? इस पर्याय में इतनी योग्यता है कि हम आत्मा को जान सकते हैं परन्तु बाह्याडम्बरों में फँसने के कारण उसे हम भूले हुए हैं।

* * * *

ारों ओर और अधिक फैल जाती है। इसलिए भद्र बनना ाहिये।

* * * *

जब तक आत्मा मे त्याग भाव न हो तब तक परोपकार ना कठिन है। परोपकार के लिये आत्मोत्सर्ग होना परमा-यक है। आत्मोत्सर्ग वही कर सकेगा जो उदार होगा और ार वही होगा जो ससार से भयभीत होगा।

* * * *

दु ख का अपहरण कर उच्चतम भावना प्राप्त करने का ाभ मार्ग यदि है तोवह दान ही है। अत जहाँ तक बने दुखियों ा दु ख दूर करने के लिये सतत प्रयत्नशील रहो, हित मिश्रित यवचनो के साथ शक्ति युक्त हस्त से दान दो।

* * * *

जिस प्रकार वात की व्याधि से मनुष्य के अग-अग दुखने ाते है। उसी प्रकार कषाय मे, विषयेच्छा से इसका आत्मा का येक प्रदेश दुखी हो रहा है। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि धर्म का अमृत पीकर अमर होने की चेष्टा करे।

* * *

रहा है, इसीलिए प्रेमी निर्भय हो कर नाना प्रकार की आपत्ति विपत्तियों के बीच से चलते हुए कहीं भी विचलित नहीं होता।

* * * *

जो सन्तोषी है, वह अधिक संचय नहीं करते, वही लोभ से रहित होते हैं। जो लोभ-रहित होते है, उन्हीं में तृष्णा का नाश होता है। जहां तृष्णा नहीं होती, वहीं मोह का अभाव होता है और जो मोह-रहित हो जाते है, वही दुःखों से मुक्त रहते हैं।

* * * *

जिस शक्ति से क्षुद्र अहंकार को प्रिय लगने वाली इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति होती है, वह आसुरी शक्ति है। जो शक्ति दूसरों की हित प्रद सेवा में प्रयुक्त होती है, वह दैवी शक्ति है।

* * * *

जब तक आकुलता विहीन अनुभव न हो तब तक शांति नहीं। अतः इन बाह्य आलम्बनों को छोड़ कर स्वावलम्बन द्वारा रागादि को क्षीण करने का उपाय करना ही अपना ध्येय बनाओ और एकान्त में बैठ कर उसी का मनन करो।

* * * *

यह ठीक है कि भद्र को हर कोई ठग लेता है पर उसको कोई हानि नहीं होती। इस से तो उसके भद्रता गुण की सुगन्धि

शुद्ध आत्मतत्व को प्राप्त कर लेता है अन्य कोई उपाय आत्म तत्व की प्राप्ति में साधक नहीं।

* * * *

यह ससार दु ख का घर है, आत्मा के लिये नाना प्रकार की यातनाओं से परिपूर्ण कारावास है। इससे वे ही महानुभाव पृथक् हो सकेंगे जो परिग्रह पिशाच के फन्दे में न आवेंगे।

* * * *

परिग्रह पर वही व्यक्ति विजय पा सकता है जो अपने को, अपने में, अपने से, अपने लिये, अपने द्वारा आप ही प्राप्त करने की चेष्टा करता है। चेष्टा और कुछ नहीं, केवल अन्तरङ्ग में पर पदार्थ में न तो राग करता है और न द्वेष करता है।

* * * *

तुम्हारे दु खों का कारण तुम्हारे साथ कोई दोष हैं, इसलिए दोषों का त्याग करो और तुम्हारे सुख का कारण तुम्हारे साथ पुण्य स्वरूप अच्छे गुण हैं, अत उनसे दूसरों की सेवा करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

* * * *

कोई दुखी जन सुख की चाह से रहित होता है, तब दोषों का त्याग कर पाता है और कोई सुखी जन सद्‌गुणों से सम्पन्न होता है, तभी दूसरों की सेवा कर पाता है।

* * *

वाले वीर पुरुषों की ही आज ससार को आवश्यकता है।

• • • •

सत्य के प्रेमियो ! ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञानी सत पुरुषों की निरभिमान होकर शरण लो, उन्हीं की आज्ञानुसा चलो। जो ज्ञानियों की आज्ञानुसार चलता है, वह बड़े ऐश्वर्यवानों मे श्रेष्ठ है।

• • • •

जब तक तुम्हारा हृदय इतना दृढ नहीं है कि तुम मूर्खो बकने पर स्थिर-शान्त बने रहो अथवा तुम में इतनी सहनशील नहीं है कि अज्ञानी मूर्खों को क्षमा कर सको, तब तक तुम अपने को कही ज्ञानी न समझ लेना।

• • • •

तुम्हें दिव्य ज्ञान की खोज मे आत्मा के अतिरिक्त कहीं भी न भटकना चाहिये। सब कुछ तुम्हे यहीं मिलेगा। पूर्णता का केन्द्र यही आत्मा है। परमात्मा की सभी महिमा, सभी शक्तियां इस आत्मा मे ही व्याप्त है, पर आत्मानुभव का सीधा उपाय मन की शान्ति है।

• • • •

जिसका मोह दूर हो गया हो वह जीव सम्यक् स्वरूप को प्राप्त करता हुआ यदि राग द्वेष को त्याग देता है तो वह

छलाग मार कर सकुशल किनारे पहुँच पाते हैं। साधारण आदमी के वश की यह बात नहीं है।

* * * *

जो अज्ञानी है, अविवेकी है, वही ऐसा सोचता है कि कुटुम्बियों को जो भुगतना पड़ेगा, वह मैं भी भुगत लूँगा। ऐसा मनुष्य क्लेश से बच नहीं सकता। उसके पापों का परिणाम, कोई भी थोड़ा-थोड़ा बँटने वाला नहीं है। उसे अकेले को ही अपने पाप का फल भोगना पड़ेगा।

* * * *

यह विश्वास रखो कि मनुष्य का मित्र वही है जो उसकी घृणा और नाराजगी की कुछ परवाह न करते हुए उसकी भूलों को एकान्त स्थान में बतलाता है।

* * * *

ज्ञान दो प्रकार है—अनन्त ज्ञान और सान्त ज्ञान। जो राग, द्वेष और मोह के निमित्त से होने वाले आवरण के कारण अवहत या न्यूनाधिक होता रहता है वह सान्त ज्ञान है, किन्तु जिसके उक्त कारणों के दूर हो जाने पर सतत एक समान ज्ञान की धारा चालू रहती है वह ज्ञान धारा अनन्त ज्ञान है।

* * * *

सुख भी दो प्रकार का है—अनन्त सुख और सान्त सुख। जो सुख पर पदार्थों के आलम्बन से होता है अत सर्वकाल एकसा

बना रहता है वह अनन्त सुख है और इससे भिन्न सान्त सु
है। सान्त सुख नाशवान् है।

* * * *

हम इतनी बार मनुष्य-शरीर धारण कर चुके हैं, कि य
उनके रक्त को एकत्र किया जाय, तो असंख्य समुद्र भर जा
मांस को एकत्र किया जाय तो, चांद और सूरज भी दब जा
हड्डियों को एकत्र किया जाय, तो असंख्य मेरू पर्वत खड़े
जायँ।

* * * *

मनुष्य शरीर इतना दुर्लभ नहीं, जितनी कि मनुष्यता दु
है। हम जो अभी संसार सागर में गोते खा रहे हैं, इसका क
यही है कि हम मनुष्य तो, बने, पर दुर्भाग्य से मनुष्यत्व नहीं
सके जिसके बिना किया-कराया सब धूल में मिल गया।

* * * *

मनुष्य की शक्ति अपर पार है, वह चाहे तो मन पर अप
अखण्ड शासन चला सकता है। इसके लिए जप करना, ध्य
करना, सत्साहित्य का अवलोकन करना आवश्यक है।

* * * *

सच्चा धर्म वही है जिसके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो,
वासनाओं का क्षय हो, आत्म-गुणों का विकास हो, आत्मा पर

कर्मों का आवरण नष्ट हो, अन्त मे आत्मा अजर, अमर पद
कर सदा काल के लिए दुखो से मुक्ति प्राप्त कर ले। ऐसा धर्म
हिंसा, सत्य, अस्तेय-चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-सन्तोष
दान-शील तप और भावना आदि है।

* * * *

माया का अर्थ कपट होता है। अतएव छल करना, ढोंग
ना, जनता को ठगने की मनोवृत्ति रखना, अन्दर और बाहर
रूप से सरल न रहना, स्वीकृत व्रतों मे लगे दोषों की
लोचना न करना माया-शल्य है।

* * * *

धर्माचरण से सासारिक फल की कामना करना, भोगों की
लसा रखना निदान है। किसी राजा आदि का धन, वैभव देख
या सुन कर मन मे यह सकल्प करना कि ब्रह्मचर्य, तप आदि
धर्म के फल-स्वरूप मुझे भी यही वैभव समृद्धि प्राप्त हो, यह
दान-शल्य है।

* * * *

सत्य पर श्रद्धा न लाना, असत्य का आग्रह रखना, मिथ्या
-शल्य है। यह शल्य बहुत भयकर है। इसके कारण कभी भी
के प्रति अभिरुचि नहीं होती। यह शल्य सम्यग् दर्शन का
धी है।

* * * *

ससार मे जो भी बाह्य भौतिक पदार्थ हैं, वे मेरे नहीं हैं और
ही कभी उनका हो सकता हूँ—इस प्रकार हृदय मे निश्चय

ठान कर हे भद्र ! तू बाह्य वस्तुओं का त्याग कर दे और मो
प्राप्ति के लिए सदा आत्म-भाव में स्थिर रह ।

* * * *

जब तू अपने को अपने आप में देखता है, तब तू दर्शन औ
ज्ञान रूप हो जाता है, पूर्णतया शुद्ध हो जाता है । जो साध
अपने चित्त को एकाग्र बना लेता है, वह जहाँ कहीं भी र
समाधि-भाव को प्राप्त कर लेता है ।

* * * *

मेरी आत्मा सदैव एक है, अविनाशी है, निर्मल है, औ
केवल ज्ञान-स्वभाव है । ये जो कुछ भी बाह्य पदार्थ हैं, सब आत्
से भिन्न हैं । कर्मोदय से प्राप्त, व्यवहार दृष्टि में अपने कहे जा
वाले जो भी बाह्य-भाव हैं, वे सब अशाश्वत हैं, अनित्य हैं ।

* * * *

ससार रूपी वन में प्राणियों को जो यह अनेक प्रकार
दु ख भोगना पडता है, सब सयोग के कारण है, अतएव अप
मुक्ति के अभिलापियों को यह सयोग मन, वचन एव शरीर त
हो प्रकार से छोड देना चाहिए ।

* * * *

साधक ! सुख, शान्ति और आनन्द की खोज में चञ्च
बना क्यों इधर उधर भटक रहा है ? खिन्न और उदास क्यों ब
ह ? शान्ति, सुख, और आनन्द की अक्षय निधि तेरे पास ही

है, पगले ! क्यों व्यर्थ मे भटक रहा है ? हीरे की खान तेरे पास ही है ।

* * * *

अपने आप को स्थिर कर चित्त को शान्त रख । स्थिर भाव, वह स्थिरता ही तुझे अक्षय आनन्द दे सकेगी । अपने पास अक्षय भण्डार होने पर भी तू क्यों खेद खिन्न होता है ?

* * * *

आत्मा के पतन का मुख्य कारण है—मिथ्यात्व, कषाय और प्रमाद । मिथ्यात्व से वह अपने स्वरूप को भूल जाता है । कषाय से वह सदा अशान्त रहता है । प्रमाद से वह उत्थान के लिए सत्प्रयत्न नहीं कर पाता ।

* * * *

साधक ! तू ससार के अन्धेरे मे भटकने के लिए नहीं है । तेरी यात्रा तो ज्ञान और विवेक पूर्वक होनी चाहिए । सम्यकत्व से तू मिथ्यात्व को हटा, उपशम भाव मे कषाय को जीत और अपने बल, वीर्य तथा पराक्रम से प्रमाद को दूर कर ।

* * * *

पापाचरण एक शल्य है, जो उसे बाहर न निकाल कर मन मे ही छिपाए रहता है, वह अन्दर ही अन्दर पीडित रहता है, बर्बाद होता है ।

* * * *

ठान का है भद्र ! तू बाह्य वस्तुओं का त्याग कर दे और मोक्ष
प्राप्ति के लिए सदा आत्म-भाव में स्थिर रह।

• • • •

जब तू अपने को अपने आप से देखता है, तब तू दर्शन
ज्ञान रूप हो जाता है, पूर्णतया शुद्ध हो जाता है। जो मन
अपने चित्त को एकाग्र बना लेता है, वह जहाँ कहीं भी
समाधि भाव को प्राप्त कर लेता है।

• • • •

मेरी आत्मा सदैव एक है, अविनाशी है, निर्मल है और
केवल ज्ञान-स्वभाव है। ये जो कुछ भी बाह्य पदार्थ हैं, सब अन्
से भिन्न हैं। कर्मोदय से प्राप्त, व्यवहार दृष्टि से अपने कहे जा
वाले जो भी बाह्य-भाव हैं, वे सब अशाश्वत हैं, अनित्य हैं।

• • • •

ससार रूपी वन में प्राणियों को जो यह अनेक प्रकार
दुःख भोगना पड़ता है, सब सयोग के कारण है, अतएव मो
मुक्ति के अभिलाषियों को यह सयोग मन, वचन एवं शरीर ती
हो प्रकार से छोड़ देना चाहिए।

• • • •

साधक ! सुख, शान्ति और आनन्द की खोज में चञ्च
बना क्यों इधर उधर भटक रहा है ? खिन्न और उदास क्यों ब
है ? शान्ति, सुख, और आनन्द की अक्षय निधि तेरे पास ही

है, पगले! क्यों व्यर्थ में भटक रहा है? हीरे की खान तेरे पास ही है।

* * * *

अपने आप को स्थिर कर चित्त को शान्त रख। स्थिर भाव, वह स्थिरता ही तुझे अक्षय आनन्द दे सकेगी। अपने पास अक्षय भण्डार होने पर भी तू क्यों खेद खिन्न होता है?

* * * *

आत्मा के पतन का मुख्य कारण है—मिथ्यात्व, कषाय और प्रमाद। मिथ्यात्व से वह अपने स्वरूप को भूल जाता है। कषाय से वह सदा अशान्त रहता है। प्रमाद से वह उत्थान के लिए सत्प्रयत्न नहीं कर पाता।

* * * *

साधक! तू संसार के अन्धेरे में भटकने के लिए नहीं है। तेरी यात्रा तो ज्ञान और विवेक पूर्वक होनी चाहिए। सम्यकत्व से तू मिथ्यात्व को हटा, उपशम भाव से कषाय को जीत और अपने बल, वीर्य तथा पराक्रम से प्रमाद को दूर कर।

* * * *

पापाचरण एक शल्य है, जो उसे बाहर न निकाल कर मन में ही छिपाए रहता है, वह अन्दर ही अन्दर पीडित रहता है, बर्बाद होता है।

* * * *

सरल हृदय निष्कपट साधक ही शुद्ध हो सकता है। शुद्ध मनुष्य के सरल हृदय में ही धर्म ठहर सकता है। शुद्ध हृदय साधक, घी से सिंचित अग्नि की तरह शुद्ध होकर परम निर्वाण अर्थात् उत्कृष्ट शान्ति को प्राप्त होता है।

• • • •

आत्म-दोषों की आलोचना करने से पश्चाताप की भट्ठी सुलगती है। और उस पश्चाताप की भट्ठी में सब दोषों को जलाने के बाद साधक परम वीतराग भाव को प्राप्त करता है।

• • • •

तू अपने किए पापों से अपने को ही मलिन बना रहा है। पाप छोड़ दे तो स्वयं ही शुद्ध हो जाएगा। शुद्धि और अशुद्धि अपने आप ही आती है। अन्य मनुष्य अन्य मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

• • • •

आत्मा को पहचानने से, प्रभु का ध्यान करने से और गुणों का अनुसरण करने से मनुष्य ऊँचे जाता है। बुरे काम करने से नीचे जाता है।

• • • •

जिनका हृदय शुद्ध है वे धन्य हैं, क्योंकि उन्हें परमात्मा की प्राप्ति अवश्य ही होगी। अतएव यदि तुम शुद्ध नहीं हो तो फिर चाहे दुनिया का सारा विज्ञान तुम्हें अवगत हो जाय, परन्तु फिर भी, उसका कुछ उपयोग न होगा।

• • • •

कुछ लोग दूसरों के दोषों की ओर ही नजर फेंकते रहते हैं, किन उन्हें अपने दोष देखने की फुर्सत ही नहीं मिलती। हमे क्सर अपने मित्रों की बुराइयो को कहने और सुनने का जरूरत से यादा शौक होता है। अपनी ओर देखना बहुत कम लोग ानते हैं।

* * * *

सोने से पहले तीन चीजों का हिसाब अवश्य कर लेना चाहिए। हली बात यह सोचो कि आज के दिन मुझसे कोई पाप तो नहीं आ। दूसरी बात यह सोचो कि आज कोई उत्तम कार्य किया है ा नहीं ? तीसरी बात यह सोचो कि कोई करने योग्य काम मुझ े छूट गया है या नहीं ?

* * * *

जाति और कुल मनुष्य को दुर्गति से नहीं बचा सकते। स्तुत अच्छी तरह सेवन किए हुए ज्ञान और चरित्र के सिवाय सरी कोई वस्तु भी मनुष्य को दु ख से नहीं बचाती है।

* * * *

आपको सोचना यह चाहिए—मैं अपने कर्त्तव्य का पालन रूँगा। और ईमानदारी से काम करूँगा, उसमें फिर नफा कशान जो भी आयगा, उसे सहर्ष भाव से अंगीकार करूँगा।

* * * *

जितने-जितने अंशों में विकार नहीं है और जितने-जि[illegible]
अंशों में इच्छाएँ और कामनाएँ नहीं हैं, उतने २ अंशों में धर्म
और जितना धर्म होगा, उतना ही आत्मा आगे बढ़ेगी।

• • •

यह आत्मा स्वयं कर्म करती है, अपने आप बन्धन में पड़
है, अपने आप अपने आपको बन्धन में डाल कर मजबूत हो ज
है, और जब अपने आप बन्धन डाला है तो उसका फल
अपने आप भोगती है। न कोई दूसरा उसे बन्धन में डालता
और न कोई फल भुगताता है।

• • •

तू इस बुद्धि और विचार का परित्याग कर दे कि हम दु
दु:ख देने वाला कोई और है। तेरे ऊपर, तेरे सिवाय और कि
की सत्ता नहीं चल सकती। तेरा मंगल और अमंगल, संसार औ
मोक्ष, सभी कुछ, पूरी तरह ही हाथ में है।

• • •

मनुष्य अपने चरित्र की प्रति दिन देख-भाल करे और
वणिक् की तरह अपने मनुष्य जन्म रूपी निधि को टटोल कर दे
कि उस में कितने तो पशुता के खोटे सिक्के हैं और कितने
पुरुषता के सच्चे सिक्के हैं? मेरा कौन सा आचरण जानवर
समान है और कौन सा महापुरुषों के समान है?

• • •

तेरी दाढी सफेद हो गई है। ये श्वेत केश यमराज के दूत
कर तुझे चेतावनी देने आए हैं कि शीघ्र सावधान हो जा।
जन्म की तारीख तो दूर बढती जा रही है और मौत की तारीख
दीक आती जा रही है। सूर्य क्या जा रहा है, वह तेरे जीवन
एक एक हिस्सा काट कर ले जा रहा है, तू अपना होश सभाल।

* * * *

ज्ञानी पुरुष किसी ज्ञानी से मिलता है तो प्रेम की बात करता
और बातों ही बातों मे वह प्रेम का झरना बहा देता है।
तु मूर्ख से मूर्ख मिल कर क्या करते हैं? या तो वे घूसे से
करते हे या लात मार कर चल देते हैं।

* * * *

आप के अन्दर जो चरित्र हे, वह जितना बलवान् होगा,
का वाहरी जीवन भी उतना ही महान् बनेगा। और आन्तरिक
नहीं हे तो बाहर का जीवन भी महान् नहीं बन सकता।
सारा ससार प्रलय के किनारे खडा हुआ है और घोर अध-
के सामने खडा है। यहाँ रावण की तलाश करें तो हजारो
, बुरी वृत्ति वाले। मगर राम का कहीं खोजने पर भी पता
मिल रहा है।

* * *

तप उतना ही करना चाहिए जिससे शरीर मे समाधि-भाव
रहे। तप का उद्देश्य आत्म-शान्ति हे। पर जिस तप से शरीर

सुख की जननी निष्पृहता है, लालच का रंग अति बुरा है इसका रंग जिस के चढ जाता है वह कदापि सुखी नहीं रह सकता। सुख का मूल कारण पर पदार्थ की लालसा का अभाव है, यह जब तक नहीं रहती है तब तक सुख होना असम्भव है।

* * * *

संसार मे वही मनुष्य सुखी होता है, जो अपने पराये का ज्ञान कर सब पदार्थों से ममता छोड देता है। ममता ही संसार की जननी है। इसका सद्भाव ही आत्मा के दुःख का बीज है।

* * * *

जगत को प्रसन्न करने का भाव त्याग दो; जो कुछ बने स्वात्म-हित की ओर दृष्टिपात करो। संसार मे ऐसा कोई नहीं जो पर का कल्याण कर सके। कल्याण का मार्ग स्वतन्त्र है।

* * * *

प्राणी मात्र का कल्याण उसके अधीन है। जिस काल में वह अपनी ओर दृष्टिपात करता है, अनायास बाह्य पदार्थों से विरक्त हो कर आत्मा के कल्याण-मार्ग में लग जाता है।

* * * *

संसार में सभी दुःखों के पात्र हैं। साराश यह है कि संसार में जो सुख चाहते है वे मूर्छा त्यागें। मूर्च्छा त्याग बिना कल्याण नहीं।

* * * *

अपनी आत्मा को अपने वश मे रखना कल्याण का पूर्ण उपाय है। जिसने ससार परवशता चाही वह कभी ससार महोदधि से पार नहीं हो सकता।

* * * *

व्यर्थ करना आत्म-पवित्रता की अवहेलना करना है। सकोच ना आत्मा को दुर्बल बनाना है। अत. जहाँ तक बने पर से न्ध त्यागो। पर के साथ सम्बन्ध से ही जीव दुर्गति का पात्र ता है। इसलिये स्वात्म-सम्बन्धी ज्ञान में ही चेष्टा करनी हिये।

* * * *

और को समझने की अपेक्षा अपने हो को समझना अच्छा । यदि अपनी प्रकृति ज्ञान मे आ गई तब सभी आ गया। था कुछ नहीं आया। ठीक ही है—"आप को न जाने सो क्या जहान को।"

* * * *

मनुष्य वह वस्तु है जो आत्मा को ससार बन्धन से मुक्त देती है। अमानुपता ही सासारिक दु.खो की जननी है। य वह जो अपने को ससार के बन्धनो से मुक्त रखने के लिए कारणों से बचे।

* * * *

सग्रह मे दु ख और त्याग में सुख है। सुख का घातक पर वस्तु का ममत्त्व है। जब तक वह नहीं जाता तब तक आत्मा ससार के दु खों से नहीं छूटता।

* * * *

ससार में जो मनुष्य नाम के लोभ से दान देते है मेरी समझ मे तो उनके पुण्य बन्ध भी नहीं होता, क्योंकि तीव्र कषाय में पाप का ही सञ्चय होता है। परन्तु क्या किया जाय पहिले लोभ कषाय से ग्रहण किया था, अब मान कषाय से त्याग रहे हैं। कषाय से पिण्ड न छूटा पर हाँ इतना हुआ कि दानी कहलाने लगे।

* * * *

किसी कार्य को असम्भव समझ हताश न होओ, उद्यमशील रहो, अनायास मार्ग मिल जायेगा। मार्ग अन्यत्र नहीं अपने पास है, भ्रम को दूर कर प्रयत्न करो तो उसका पता अवश्य ही लग जायेगा।

* * * *

जिसमें कषाय, विष और आहार का त्याग हो उसे उपवास कहते हैं। जिस में यह नहीं है वह तो केवल लंघन ही है। अत यदि अन्तरग की कषाय शान्त नहीं हुई तब उपवास करने मे क्या लाभ ?

* * * *

जो व्यक्ति उपवास करता है वह स्वय अपनी आत्म-निर्मलता

का अनुभव करे। यदि उसे अपने मे विशुद्धि का आभास न हो तब पुन. आत्म-सशोधन करे कि भूल कहाँ हुई है।

* * * *

धर्म प्रेमी वह हो सकता है जो राग द्वेष जैसे शत्रुओं पर विजय करने की चेष्टा करे। केवल उपवास करने से यदि रोग वृद्धि हो जाए तब ऐसे उपवास सयम के साधक नहीं प्रत्युत घातक हैं।

* * * *

धर्म सासारिक सुख देने के लिए नहीं है, और न उससे इन छोटी वस्तुओं की कामना करनी चाहिए। वह तो मोक्ष सुख देने वाली शक्ति है। परन्तु वह प्राप्त तभी होगी जब कि व्यक्ति निष्काम रहे।

* * * *

सद्गुण देखना है तो दूसरो में देखो, दोष देखना है तो अपने में देखो। अपनी प्रशसा और पराई निन्दा दोनों अपने आप को ले गिरने वाली कुवा और खाई हैं।

* * * *

ससार के समस्त प्राणी मात्र के प्रति दया और मित्रता का व्यवहार रखो। दया और मित्रता यह दोनों गुण सुखी जीवन के खजाने की अक्षम पूँजी है।

* * * *

ससार की कोई भी वस्तु तुम्हारी नहीं। इसलिये उनसे स्नेह छोडो, ममत्व छोडो, त्याग करने का प्रयत्न करो। आवश्यकता

से अधिक कोई भी वस्तु मत रखो। आवश्यकता से अधिक परिग्रह रखना दूसरों का हिस्सा छीनना है, उन्हें दुःखी करना है।

• • • •

क्षमा, विनय, सरलता, सन्तोष, सत्य, सयम, तप, त्याग, अकिंचन्त और ब्रह्मचर्य ये दस मोक्ष महल की सीढियाँ जितनी कुशलता से चढोगे उतने ही ऊपर पहुँचोगे।

• • • •

जिनके विचारों मे मलिनता है उनके कोई भी व्यापार लाभ प्रद नहीं। सभी चेष्टाएँ ससार बन्धन से मुक्त होने के लिए ह परन्तु म ुष्यों के व्यापार समार मे फॅसने के ही लिये हैं। व्यापार का प्रयोजन पञ्चेन्द्रियों के विषय से है।

• • • •

कोई पदार्थ जब इष्ट-अनिष्ट न भासे, स्वकीय रागादि परिणाम ही को सुख और दु ख का कारण समझे। जब ऐसी सुमति आने लगे तब समझे कि अब संसार का अन्त होने का सुअवसर आ गया।

• • • •

पर पदार्थों की परिणति बुरी-भली मानना ही मोक्ष-मार्ग मे परे जाना है। मोक्ष-मार्ग सरल है, उस के लिये बडे-बडे शास्त्र और बडे-बडे विद्वानों के समागम की अपेक्षा नहीं, केवल अन्तरग कलुपता के अभाव की अपेक्षा है।

• • • •

अधिकाश मनुष्य केवल मनोरथ मात्र से ससार बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं परन्तु पानी का स्पर्श किये बिना तैरना सीखने जैसी उनकी यह क्रिया हास्यास्पद ही है। ससार बन्धन से मुक्त होने का उपाय तो यह है कि आगामी विषयों से प्रेम मत करो।

* * * *

ससार मे इस लोकेषणा ने ही हम को आज तक उठने से रोका। क्या मोक्षमार्ग कोई अमूल्य और दुर्लभ वस्तु थी? हमारी ही अज्ञानता उसे आकाश-कुसुम बनाये है। तिल की ओट पहाड है।

* * * *

शान्ति का मूल उपाय श्रद्धा है। यथार्थ श्रद्धा के बिना शान्ति की आकाक्षा करना पानी से घी निकालने के सदृश है। बिना श्रद्धा आत्मा का कल्याण नहीं होता, क्योंकि सभी धर्मों की मूल जननी श्रद्धा है।

* * * *

जिनके सत्य श्रद्धा है, तथा सम्यग् ज्ञान है वह काल पा कर मोक्ष के भागी हो सकते हैं, किन्तु जिन जीवों ने सम्यग्दर्शन और समग् ज्ञान नही किया, केवल आचरण के ऊपर दृष्टि है वे जीव दिग् भ्रम वाले के सदृश आत्म-कल्याण के भागी नहीं हो सकते।

* * * *

ज्ञानी होने की प्रत्येक प्राणी की इच्छा है परन्तु परिश्रम से डरता है। परिश्रम से डरना और तत्वज्ञान का उपासक बनना यह कितनी विरुद्ध कल्पना है? ऐसी ही जैसे कि तैरना आ जावे और पानी का स्पर्श न हो।

* * * *

सब कोई अपने को ससार बन्धन से छुडाना चाहते हैं, और उनका विपुल प्रयास भी इस विषय मे रहता है परन्तु प्रयास अन्यथा रहता है। कहाँ तक लिखा जावे जो कारण ससार बन्धन के हैं उन्हीं को मोक्ष मार्ग का साधन मान रहे हैं।

* * * *

जब तक यह कषाय अन्तरग मे रहेगी तब तक बाह्य प्रवृति मोक्ष-मार्ग की साधक नहीं, प्रत्युत दम्भ पोषक ही है। कषायों के छिपाने के लिए जो प्रयास है वह माया कषाय है, और वह मोक्ष-मार्ग का प्रबल शत्रु है।

* * * *

माया कषाय के उदय मे हृदय की गति वक्र हो जाती है। स्वाभाविक सरलता को छोड दुनिया को अपने छल कपट से ठगने की भावना होती है। भले ही वह ठगाई जाय, न ठगाई जाय परन्तु उसकी आँखों में धूल झोंकने की चेष्टा की जाती है।

* * * *

पर पदार्थ यदि अनुकूल परिणाम गया तब केवल मान कषाय
ी पुष्टि हुई तथा साथ ही अहं बुद्धि की पुष्टि हुई। इस चक्र से
ो बचा वही उत्तम है।

* * * *

ससार की परिणति अति वक्र हो रही है और वक्रता ही
ासार का मूल है। वक्रता का कारण दुर्वासना है। जब तक
ासना की निर्मलता न हो तब तक ससार का अन्त न होगा।

* * * *

अभ्यन्तर मोह की परिणति इतनी प्रबल है कि इसके प्रभाव में
ाकर जरा भी रागांश को त्यागना कठिन है। अधिक से अधिक
ाग केवल बाह्य रूपादि विषयों का प्रत्येक मनुष्य कर सकता है
िन्तु आन्तरिक त्याग करना अति कठिन है।

* * * *

अशान्ति का मूल स्वयं है और जहाँ तक अपनी निर्बलता
हेगी तब तक अशान्ति नहीं जा सकती, क्योंकि अशान्ति का
त्पादक यह बहुरूपिया मोह है।

* * * *

परिग्रह सब से बुरी बला है। इससे अपनी रक्षा करना कठिन
। सब पापों का मूल परिग्रह है। अन्य पाप इसके ही परिवार हैं।

* * * *

जब तक यह जीव पर वस्तुओं को अपनाता है और उन्हें

अपने अनुकूल परिणमाने की चेष्टा करता है, तब तक अनन्त ससार के अनन्त कल्पनातीत दखों का पात्र होता है।

•   •   •   •

जो भी कार्य हो उसे निश्चिन्तता और दृढ विचार से करो। सङ्कल्प विकल्पक जाल से सर्वदा पृथक् रहो। इसके जाल से फिर निकलना कठिन है।

•   •   •   •

जहाँ अपनी इच्छा का निरोध हो जाएगा स्वयमेव ससार की समस्त समस्याएँ सुलझ जाएँगी। इच्छा या अभिलाषा के शान्त हुए विना ऊपरी त्याग की कोई महिमा नहीं।

•   •   •   •

दुःख का मूल कारण अपनी इच्छा है, जो चाहती है कि ससार के समस्त पदार्थ मेरे ही अनुकूल परिणमें। अत. जब तक इच्छा का अभाव न होगा तब तक शान्ति का होना असम्भव है।

•   •   •   •

भोजन सात्त्विक होना चाहिए। सात्त्विक भोजन से शरीर नीरोग रहता है। मोक्ष का मार्ग सरल होता है। सात्त्विक भोजन सहज पचता है, उस मे विकृतता नहीं होती।

•   •   •   •

गरिष्ठ भोजन रोग का कारण है। राग रोग भी वर्तमान है। उत्तर काल मे इसका फल ससार है और वर्तमान में जो राग न करे

सो अल्प है। इन्द्रियों मे रसना, कर्मों में मोहनीय, व्रतों में ब्रह्मचर्य और गुप्ति में मनोगुप्ति कठिन है दमन करना।

* * * *

आत्मा निर्मल होने से मोक्ष मार्ग को साधक है और आत्मा ही मलिन होने से ससार की साधक है। अतः जहाँ तक बने आत्मा की मलिनता को दूर करने का प्रयास करना हमारा कर्तव्य है।

* * * *

मदिरा मन को मोहित करती है। जिस का चित्त मोहित हो जाता है वह धर्म को भूल जाता है और जो मनुष्य धर्म को भूल जाता है वह निःशङ्क हो कर हिंसा का आचरण करता है।

* * * *

परन्तु मोह! तेरी महिमा अचिन्त्य है, अपार है, जो ससार मात्र को अपना बनाना चाहता है। नारकी की तरह मिलने को तो कण भी नहीं, परन्तु इच्छा ससार भर के अनाज खाने को होती है।

* * * *

यदि मोक्ष की इच्छा है तो ज्ञान गुण प्राप्त करो। यदि जीव ज्ञान से रहित है और वह बहुत सी क्रियाएँ भी करे तो भी उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता क्योकि ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष मिलती है।

* * * *

सयम के बिना इहलोक और परलोक में काम नहीं चलता है। आत्मा में निर्मल परिणामों से ही कायबल मिलता है। अपने उपयोग को सम्भालो, चित्त को वश मे करो। दया अनुकम्पा करो, परमार्थ को विचारो। कम बोलो, गम खाओ।

• • • •

समय व्यर्थ नहीं खोना, यही मनुष्य की मनुष्यता है। समय तो जाता ही है परन्तु उसे प्रमाद से नहीं जाने देना चाहिए। पुरुषार्थ करो और वह पुरुषार्थ करो जिससे आत्मा को शान्ति मिले, क्योंकि आत्मा का लक्ष्य सुख की ओर होता है।

• • • •

चित्तवृत्ति को वश मे रखना शूरवीर का काम है। कायर मनुष्य अपने ऊपर स्वाधीनता नहीं रख सकता। पर पदार्थों में ही दोष देखता है, निमित्त कारणों में ही कल्याण व अकल्याण देखता है।

• • • •

ज्ञान उपासना के बिना चरित्र की उपासना सर्वथा असभव है। ज्ञान वह वस्तु है जो आत्मा को भेद ज्ञान कराने में समर्थ हो कर शान्ति का पात्र बनाता है।

• • • •

इस भव वन मे भटकते प्राणियों को जो कष्ट होता है उसे वही जानता है उस की कथा करना एक कातुहली प्रथा है। तत्त्व दृष्टि से अपने परिणाम परिपाटी को विचारो शान्ति के उत्पादन में कौन बाधक कारण है।

• • • •

प्रयास हीन प्राणी का जीवन निरर्थक है। जीवन लक्ष्य आत्महित है। जिन प्राणियों के मोक्ष मार्ग विषयक प्रयास नहीं उनकी जीवन लीला क्रीडामात्र है।

• • • •

हे भव्य जन ! तुम इस जगत् मे अधःलोक के भवनवासियों में, मध्य लोक के मनुष्यों में और ऊर्ध्व लोक के देवों में जो कुछ विस्मयकारी दृश्य देख रहे हो वे सब इस आत्मा के ही चमत्कार हैं। इसलिए तुम एक मन हो कर सदा इस आत्मा की ही आराधना करो।

• • • •

इस आत्मा की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। इन्हे शब्दों में बाध कर बयान करने में भला कौन समर्थ हो सकता है ? ये शक्तियाँ अनेक तरह के ध्यान बल से स्वय ही प्रकट हो जाती हैं।

• • • •

परन्तु कितना खेद है कि यह आत्मा अपने स्वरूप को भुला कर पिछले कर्म सस्कारों से प्रेरा हुआ इन्द्रिय विषयों में सुख मान रहा है, जो विपाक के समय विषैले भोजन के समान अत्यन्त दु:खदाई है।

• • • •

हे आत्मन् ! यदि तुझे परम सुख, परम शान्ति, परम सुन्दरता की चाह है, तो तुझे आप अपने में ही बैठ कर इन्हें ढूंढना चाहिए, इनके लिए न बाह्य वस्तुओं की जरूरत है और न इन्द्रिय सहायता की।

किसी स्वजन की मृत्यु के पश्चात् छाती पीटना और रोना प्रगाढ अविवेक का लक्षण है। ऐसा करने से न मृतात्मा लौटता है और न रोने वाले का दुख ही दूर हो सकता है।

जितने महा पुरुष हुए हैं, सब इस पृथ्वी पर ही हुए हैं, इस पृथिवी पर रहते हुए अपना और पराया कल्याण जितना किया जा सकता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं—देवलोक में भी नहीं होता है।

भोजन के साथ मन, वाणी और स्वभाव का पूर्ण सम्बन्ध है। जो जैसा भोजन करता है उसके मन, वाणी और स्वभाव में वैसा ही सद्गुण या दुर्गुण आ जाता है। कहावत है—'जैसा आहार वैसा विचार, उच्चार और व्यवहार'।

जब कोई मनुष्य सत्य से विरुद्ध कार्य करना चाहता है तो उसकी आत्मा भीतर ही भीतर संकेत करती है कि यह कार्य बुरा है। यह कार्य करना उचित और कल्याणकर नहीं है।

धन तुम्हारे लिए है या तुम धन के लिए हो? अगर तुम मझ गये हो कि धन तुम्हारे लिए है तो तुम धन के गुलाम से बन सकते हो?

* * * *

तप करने वाले की वाणी पवित्र और प्रिय होती है। और ो प्रिय, पथ्य और सत्य बोलना है, उसी का तप वास्तव में तप । असत्य या कटुक वाणी कहने का तपस्वी को अधिकार नहीं । तपस्वी अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा भय भीत को निर्भय ना देता है।

* * * *

दया श्रेष्ठ है पर ज्ञान के बिना उसका पालन नहीं हो सकता। ही दया श्रेष्ठ है जो ज्ञान पूर्वक की जाती है। इसी प्रकार ज्ञान ी वही श्रेष्ठ है जिस से दया का आविर्भाव होता हो। ज्ञान ौर दया का सम्बन्ध वृक्ष और उसके फल के सम्बन्ध के समान ।

* * * *

परमात्मा का स्मरण करने के लिए किसी खास समय की निवार्य आवश्यकता नहीं है। इसका अभ्यास तो श्वासोच्छ्वास ने और छोडने के अभ्यास की तरह स्वाभाविक बन जाय ो समझना चाहिए कि परमात्मा का भजन स्वाभाविक रूप हो रहा है।

* * * *

अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओं पर ममत्व हटा लो। 'यह मेरा है' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है। 'इद न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं, ऐसा कह कर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहकार का विलय हो जायगा और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा।

• • • •

वास्तव मे कोई मनुष्य ऐसा हो ही नहीं सकता, जिस से घृणा की जाय या जिसे छूने से छूत लगती हो। सभी प्राणियों की आत्मा सरीखी-परमात्मा के समान है और शरीर की बनावट के लिहाज से मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है।

• • • •

शरीर व मन-बुद्धि की प्रत्येक क्रिया को आत्ममयी देखना जगत् में परमात्मा का अनुभव या साक्षात्कार करना है।

• • • •

आध्यात्मिकता क्या है। मकान का जो रिश्ता बुनियाद से है, पेड का जो नाता जड से है, वही सम्बन्ध मनुष्य-जीवन का आध्यात्मिकता से है। जब तक हम किसी बात का ऊपर ही ऊपर विचार करते हैं तब तक हम व्यवहारी या दुनियादार हैं, जब हम उसकी तह तक पहुँचते हैं, तब हम आध्यात्मिक होते हैं।

• • • •

सत्य एक हकीकत है, जिसे अनुभव करना है, अहिंसा एक वृत्ति है, जिसका विकास करना है। सत्य जगत् में सर्वत्र व्याप्त तथ्य का नाम है और अहिंसा जगत् के प्रति अपने सम्बन्ध या व्यवहार का सर्वोच्च नियम है।

• • • •

सत्य ही मनुष्य का एक मात्र साध्य है—शेष सब साधन हैं। शास्त्र, कला, सौन्दर्य, सब सत्य की ओर ले जाने वाली सीढ़ियां हैं। यदि ये सत्य से विमुख होने लगें तो समझ लो कि ये व्यभिचारी हो गये हैं।

• • • •

यदि शरीर में स्वास्थ्य आ रहा है तो वह प्रत्येक अणु परमाणु में आये व प्रकट हुए बिना न रहेगा। वैसे ही यदि हम में सत्य का सचार हो रहा है तो वह प्रत्येक अणु तक पहुँचे बिना व उनमें झलके बिना कैसे रहेगा?

• • • •

जो सत्य का अनुयायी है उसे किसी पर क्रोध करने का अधिकार नही। क्योंकि क्रोध करना दूसरे को उस के सत्य को प्रकाशित करने—हम तक पहुँचाने से रोकना है, या अपने सत्य को उसके लिए स्वागत करने योग्य रूप मे प्रकट करना है।

• • • •

सत्य की आंच जब हम को जलाती हुई प्रतीत होती है,

तब वास्तव मे वह हम को नहीं, हमारी बुराइयों और गन्दगियों को जलाती है।

० ० ० ०

शंकाशीलता और श्रद्धा दोनों का निवास एक जगह नहीं हो सकता। एक असत्य व दूसरा सत्य का रूप है। दोष-दृष्टि से शंकाशीलता और शंकाशीलता से जगत् के प्रति अनुदारता उत्पन्न होती है।

० ० ० ०

जब वैभव और विभूति से मु ह मोड लेने का बल आनेलगे तब साधना में सफलता मिलने लगती है। जब तक किसी विभूति के लिए प्रयत्न करतेहो तब तक अपने को सत्य-पथ से भटका हुआ समझो।

० ० ० ०

शेर का बच्चा शेर की भयंकरता और हिंस्रता से नहीं डरता। किलक-किलक और उछल-उछल कर उसके गले से लिपटता है, उसी प्रकार सत्य का अनुयायी सत्य की प्रचंडता से नहीं घबराता, उल्टा उसके पास दौड-दौड कर जाता है।

० ० ० ०

जो सत्य-पालन पर ही तुला है उसके विवेक का विकास या शुद्धि हुए बिना नहीं रह सकती। चारों तरफ सत्य देखने, व

सत्य का निर्णय करने की वृत्ति से ही विवेक का विकास हो सकता है।

• • • •

जो अपने विरुद्ध किसी के भावों के प्रकाश, या प्रचार से डरता है, वह सत्य को अपने पास आने से रोकता है। जो उसकी शिकायत करता है वह मानों अपनी कमजोरी को स्वीकार करता है।

• • • •

जब मैं स्नेह, मोह, लोभ से प्रभावित होता हूँ तो जिधर जाता हूँ उधर से काटे चुभने लगते हैं। जब सत्य को शरण जाता हूँ, तो मानो काटे चुभने बन्द हो जाते हैं, या उन्हे हँसते हसते सहने का बल मिलने लगता है।

• • • •

पहले मैं डरता था कि यदि असत्य अधिक है और सत्य थोडा है तो असत्य उसे दबा लेगा, अब अनुभव से देखता हूँ कि असत्य तो फूस की तरह उडने वाला है और सत्य की एक चिनगारी भी उसे भसम कर देने मे समर्थ हो जाती है।

• • • •

मैं जितना ही ढोंग करता हूँ उतना ही जगत् को नहीं, अपने को ही धोखा देता हूँ। क्योंकि जगत् की दृष्टि मेरी ओर

रहेगी और मेरी जगत् की ओर। जगत् मुझे हजारों आँखों से देखेगा, मैं उसे सिर्फ दो ही आँखों से देख सकूंगा।

° ° ° °

जब तक तेरे हृदय में ईर्ष्या-द्वेष है, तब तक तुझे शान्ति नहीं मिल सकती। शान्ति सत्य के अवलम्बन मे है, ईर्ष्या-द्वेष रूपी कुहरा सत्यरूपी सूर्य के तेज और प्रकाश को मलिन कर देता है।

° ° ° °

सत्याग्रही को अपने अस्तित्व की क्या चिन्ता? सत्य ही उसका अस्तित्व, सत्य ही उसका आधार, सत्य ही उसका तीर और सत्य ही उसका कवच है। जिसमें सत्य है उसमे क्या नहीं है?

° ° ° °

यदि किसी दुखी के लिए तुम्हारे पास सान्त्वना नहीं है तो अपने व्यंग्य और उपहास से तो उसके कलेजे को मत छेदो वह अमृत की आशा मे आया है। ज़हर तो उसे साँप और छिपकली से भी मिल सकता था।

° ° ° °

चींटी या मकड़ी हमारे सारे बदन की यात्रा कर आती है, पर हमें उसका पता नहीं चलेगा। इसी प्रकार अहिंसा मार्गी का जीवन इतना हलका होना चाहिए कि उसका बोझ समाज में किसी को अनुभव न हो।

° ° ° °

वासना जब तक नीति, समाज और सदाचार की मर्यादा छोड़ देती है, तब व्यभिचार कहलाती है। वासना जब एक निष्ठ नहीं रहती तब भी व्यभिचार बन जाती है।

° ° ° °

दूसरे के दुःख से दु:खी होना आत्मिक विकास का आरम्भ है, किन्तु अपने को दुखी न होने देते हुए दु:ख का इलाज दिलो-जान से करना ज्ञान की परिणति है।

° ° ° °

आत्म-ज्ञान के बिना चित्त सन्देह-रहित नहीं होता, आत्म प्रतीति से आत्मा की ओर निश्चित व श्रद्धा-युक्त प्रयाण होता है, आत्मानुभव या आत्मस्थिति से अद्वैत-सिद्धि होती है।

° ° ° °

शरीर बाहरी जगत् से बना है, इसलिए बाहरी साधन सामग्री की ही ओर दौड़ता है, किन्तु आत्मा तो अपने ही स्वरूप में मस्त रहता है, इसलिए बाहरी उपकरणों की उसे आवश्यकता होती नहीं।

° ° ° °

रावण ने साधना की, उसे बल मिला। परन्तु उसकी साधना अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए थी इसलिए उसका बल उसके नाश का कारण हुआ।

° ° ° °

यदि तेरी आत्मा निर्भय है तो तुझे तलवार बांधने की क्या जरूरत है ? और यदि तूने मृत्यु के भय को जीत लिया तो फिर ससार मे कोई भय तुझे परास्त नहीं कर सकता।

• • • •

भय, सकट, दु ख, विपत्ति को निमन्त्रण देना जहाँ मूर्खता है, वहाँ उनके आ उपस्थित होने पर लडखडाना उससे बड़ी मूर्खनता है।

• • • •

चिन्ता भावी विपत्ति की छाया है। मानसिक प्रयत्न व चिन्ता पृथक्-पृथक् हैं। प्रयत्न मे उत्साह, आशा, साधन-बहुलता है, चिन्ता में परेशानी, घबराहट, भय, निराशा है।

• • • •

पाप को पेट मे मत रख, उगल दे। जहर तो पेट में रख लेने से शरीर को ही मारता है, किन्तु पाप तो सारे सत्व को ही मिटा देता है।

• • • •

हर्ष और शोक एक सिक्के के दो बाजू हैं। जिस में हम हानि या अभाव अनुभव करते हैं, वह है शोक, और जिसमें हम लाभ या प्राप्ति का अनुभव करते हैं, वह हर्ष है।

• • • •

अगर मुँह पर विरोध करने का सामर्थ्य या साहस नहीं है

तो पीठ पीछे स्तुति करने की भी उदारता मुझ मे न होगी। सच्चा मित्र वह है जो मुँह पर चाहे कड़वी कहे पर पीछे सदैव बड़ाई करे।

* * * *

यदि निन्दा झूठी है और 'मैं' सत्पुरुष हूँ तो मुझे सामने वाले पर क्रोध आने के बजाय दया आनी चाहिए। यदि निन्दा सही है तो मुझ मे विनम्रता के दर्शन होने चाहिएँ।

* * * *

प्रेम और वैर, पुण्य और पाप, छिपाये नही छिपते। जहाँ गुप्तता है वहाँ कोई बुराई अवश्य है। बुराई को छिपाना बुराई को बढाना है।

* * * *

जो दूसरे को बुरा कह कर उससे नफरत करता है, समझ लो उसने अभी अपने-आप को नहीं टटोला है, अपने अच्छे पन का अभिमान ही हम मे नफरत पैदा करता है और जहाँ अहकार है वहाँ क्या कम बुराई है ?

* * * *

यदि तुमने सचमुच सामने वाले मे भी अपने ही सदृश आत्मा का अस्तित्व मान लिया है तो उसके द्वारा हुई अपनी आलोचना या निन्दा से तुम्हे उद्वेग न होगा। अपने को टटोलने की जागृति होगी।

* * * *

यदि तेरी आत्मा निर्भय है तो तुझे तलवार बांधने की क्या जरूरत है ? और यदि तूने मृत्यु के भय को जीत लिया तो फिर ससार मे कोई भय तुझे परास्त नहीं कर सकता।

• • • •

भय, सकट, दु:ख, विपत्ति को निमन्त्रण देना जहाँ मूर्खता है, वहाँ उनके आ उपस्थित होने पर लड़खड़ाना उससे बड़ी मूर्खता है।

• • • •

चिन्ता भावी विपत्ति की छाया है। मानसिक प्रयत्न व चिन्ता पृथक्-पृथक् हैं। प्रयत्न में उत्साह, आशा, साधन-बहुलता है, चिन्ता में परेशानी, घबराहट, भय, निराशा है।

• • • •

पाप को पेट मे मत रख, उगल दे। जहर तो पेट में रख लेने से शरीर को ही मारता है, किन्तु पाप तो सारे सत्व को ही मिटा देता है।

• • • •

हर्ष और शोक एक सिक्के के दो बाजू हैं। जिस में हम हानि या अभाव अनुभव करते हैं, वह है शोक, और जिसमें हम लाभ या प्राप्ति का अनुभव करते हैं, वह हर्ष है।

• • • •

अगर मुँह पर विरोध करने का सामर्थ्य या साहस नहीं है

तो पीठ पीछे स्तुति करने की भी उदारता मुझ में न होगी। सच्चा मित्र वह है जो मुँह पर चाहे कड़वी कहे पर पीछे सदैव बड़ाई करे।

* * * *

यदि निन्दा झूठी है और 'मैं' सत्पुरुष हूँ तो मुझे सामने वाले पर क्रोध आने के बजाय दया आनी चाहिए। यदि निन्दा सही है तो मुझ मे विनम्रता के दर्शन होने चाहिएँ।

* * * *

प्रेम और वैर, पुण्य और पाप, छिपाये नहीं छिपते। जहाँ गुप्तता है वहाँ कोई बुराई अवश्य है। बुराई को छिपाना बुराई को बढाना है।

* * * *

जो दूसरे को बुरा कह कर उससे नफरत करता है, समझ लो उसने अभी अपने-आप को नहीं टटोला है, अपने अच्छे पन का अभिमान ही हम मे नफरत पैदा करता है और जहाँ अहकार है वहाँ क्या कम बुराई है ?

* * * *

यदि तुमने सचमुच सामने वाले में भी अपने ही सदृश आत्मा का अस्तित्व मान लिया है तो उसके द्वारा हुई अपनी आलोचना या निन्दा से तुम्हे उद्वेग न होगा। अपने को टटोलने की जागृति होगी।

* * * *

स्वार्थ-सिद्धि के लिए की गई प्रशसा से दाता की दुर्वासना बढती है, लोक कार्यार्थ प्रशसा से अभिमान, उन्नति के लिए प्रशसा से उत्साह व निष्काम प्रशसा से श्रेय बढता है ।

* * * *

प्रशसा या सफलता को भूल कर अगीकृत कार्य या कर्त्तव्य पालन मे लगे रहना ही सच्चा योग व सच्ची समाधि है। इस तल्लीनता का अन्तिम छोर ही सिद्धि है ।

* * * *

अपनी प्रशसा मे जब तक रुचि है तब तक अपनी निन्दा से भी उद्वेग हुए बिना न रहेगा। अपनी सफलता मे जब तक रुचि है, तब तक असफलता दुखदाई हुए बिना नहीं रहेगी ।

* * * *

मेरी निन्दा या बुराई मे मेरा लाभ तो यह है कि मैं आत्म-निरीक्षण मे प्रवृत्त होता रहूँगा और जगत् का यह कि वह मेरी बुराई से बचने के लिए सावधान रहने लगे ।

* * * *

किसी के ऐब उसे या दूसरों को गिनाने या गिनाते रहने से उसका सुधार नही होता, उसके कार्यों या उसके कामों की समय-समय पर मीमासा व मृदु-आलोचना समभाव-पूर्वक करते रहने से व उस के सत्कार्यों मे सहयोग देने से ही उसका सुधार हो सकता है ।

* * * *

पाप की कल्पना आरम्भ मे अफीम के फूल की तरह सुन्दर और मनोहारिणी होती है, किन्तु अन्त मे नागिन के आलिंगन की तरह विनाशमयी है ।

* * * *

जब मुझ मे अभिमान था तब जवाब-दर-जवाब न करना कायरता मालूम होती थी । अब, जब एक साधक की नम्रता का अनुभव करता हूँ तब सहन कर लेने मे आनन्द मालूम पड़ता है ।

* * * *

जब मैं क्रोध मे आकर कुछ कहता या करता हूँ तो मैं दुनिया से कहता हूँ कि मैं ने तो अपना सर्वनाश कर ही लिया है, रहा-सहा तुम पूरा कर दो ।

* * * *

नेता के पास अपने-पराए का भेद होता है । सन्त के पास नहीं । नेता यह देखता है कि यह मेरे काम आवेगा या नहीं सन्त यह देखता है कि यह दुःखी है या नहीं ।

* * * *

तुम शासक नहीं शिक्षक बनो । शासक सत्ता से काम लेता है । शिक्षक प्रेम से । सत्ता दूसरे को दबाती है, प्रेम खुद दबता है । सत्ता दूसरे को दबा कर भ्रष्ट होती है, प्रेम खुद दब कर चढ़ता और पवित्रता छिटकाता है ।

* * * *

यदि तुझे लोक प्रिय बनना है तो सेवा कर, सेवा का निमित्त मत बन। लोकप्रियता का ख्याल छोड दे, तुझे उसका सही रास्ता मिल जायगा।

*   *   *   *

जो मनुष्य थोडी बात कह कर शेष पेट में रखता है, उस से लोग डरते हैं और उस पर भरोसा नहीं रखते। सामने वाले को अन्धकार मे रखते हुए वह अपने को 'सर्च लाइट' का पात्र बनाता है और अपने को छिपाते हुए भी बार-बार पकडा जाता है।

*   *   *   *

जिसे अकेले भी अपने निर्दिष्ट पथ पर चलने की हिम्मत है वही सच्चा बहादुर है। अकेला अन्त तक निर्दिष्ट पथ पर वही चल सकता है जिसका पथ सत्पथ है और जिसे सत्पथ ही प्रिय है।

*   *   *   *

परन्तु यदि सच मुच मैं ने कोई बुराई की है, तो फिर उसके जाहिर हो जाने से मुझे इतना घबराना क्यों चाहिए? उस का जाहिर हो जाना फोडे मे से पीप निकल जाने के समान है।

*   *   *   *

जब मैं स्नेह से देखता हूँ तो मुझे सब लोग प्यारे मालूम होते है, किन्तु ज्ञान से देखने की चेष्टा करता हूँ तो सब प्याऊ पर जमी भीड के मुसाफिर मालूम पडते हैं।

*   *   *   *

अत्याचार व भय दोनों कायरता के दो पहलू हैं। कम बली पर जो अत्याचार करते हैं, वही बडे बली के समाने कायर हो जाते हैं।

* * * *

जिस तरह पानी से जिस्म की गलाजत धुल जाती है और आग की रोशनी से अन्धेरा दूर हो जाता है। इसी तरह दान और तपस्या से इन्सान का सारा पाप नष्ट हो जाता है।

* * * *

अधिक बुद्धिमान् व्यक्ति वही है जिसका उदार मस्तिष्क सम्पूर्ण मानवता के हित में आनन्दित होता है।

* * * *

जो मनुष्य विवेक पूर्ण कार्य करता है, ससार की सफलताएँ स्वय उस के गले मे जयमाला पहनाती हैं। विवेकी मनुष्य की हर जगह जय होती है।

* * * *

बाल जीवों के सग को त्याग कर दूर रहना वृद्ध तथा गुरु-जनों की सेवा करना और एकान्त मे धीरज के साथ स्वाध्याय करना, सूत्र अर्थ का चिन्तन करना, यही मोक्ष का मार्ग है।

* * * *

जिसके मोह नहीं है, उसके दुख भी नष्ट हो जाते हे। मोह का नाश करने वाले के तृष्णा नहीं होती, जिसने तृष्णा का नाश

कर दिया, उसके लोभ नहीं होता और लोभ का नाश कर देने पर अकिंचन हो जाता है।

* * * *

धर्म का पालन करते हुए जो धन प्राप्त होता है, वही सच्चा धन है, पापाचार से प्राप्त होने वाला धन तो धिक्कार के काबिल है, धन की ख्वाहिश से धर्म का त्याग नही करना चाहिए।

* * * *

बहन और भाई के प्रेम में पवित्रता है, पति और पत्नी के प्रेम में मादकता। पवित्रता शान्ति दिलाती है और मादकता व्याकुल कर देती है।

* * * *

दमन सयम एक नही है। दमन मे स्वतन्त्रता छीनी जाती है, सयम मे बुरी बातों से अपने को बचाया जाता है। दमन दूसरों-द्वारा होता है, सयम खुद किया जाता है। दमन दूसरों का बल दबाना है, सयम में अपना ज्ञान बचाना है। दमन बिगाड़ता है, सयम सुधारता है।

* * * *

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। इस प्रकार जो काम हमारे उपदेश से नहीं होता वह महा पुरुष के आचरण से अनायास ही हो जाता है। यौवन, धन-सम्पति, प्रभुत्व और अविवेक, इन मे से प्रत्येक

अनर्थकारी हैं, तो जहां ये चारों ही एकत्रित हो, वहा के अनर्थ का तो कहना ही क्या है ?

* * * *

परोपकारी सत्यपुरुषों का यह स्वभाव ही होता है, कि वे समृद्ध होने पर उद्धत नहीं रहते, किन्तु उसी प्रकार नम्र हो जाते हैं, जैसे फल से लदे हुए वृक्ष, और जल से भरे हुए बादल झुक जाते हैं।

* * * *

जिस का हृदय सार विहीन है, गम्भीरता रहित है, उसको उपदेश देना व्यर्थ है। मलयाचल के ससर्ग से दूसरे वृक्ष सुगधित बन जाते हैं लेकिन बाँस तो वैसा ही रहता है । क्योकि बाँस का हृदय सार-विहीन है।

* * * *

बुद्धिमान् लोग, धन और प्राण दूसरे के हित के लिए त्याग देते हैं। धन और प्राण का नाश तो अवश्य ही होगा इसलिए सद् कार्य के निमित्त इनका त्याग अच्छा है।

* * * *

सत्य के द्वारा सब जीवो के उपकार में प्रवृत्त होना चाहिए किसी के अपकार में प्रवृत्त न होना चाहिए, सत्य के उपयोग मे, इस प्रकार की बुद्धिमानी रखना आवश्यक है, जिसके द्वारा किसी

की घात या किसी की कोई हानि हो, वह सत्य 'सत्य' नहीं है किन्तु असत्य ही है।

* * * *

यह काल का जाल अथवा फंदा ऐसा है कि, क्षणमात्र में जीवों को फास लेता है और सुरेन्द्र तथा नरेन्द्र भी इसका निवारण नहीं कर सकते हैं।

* * * *

जीवों का आयुर्बल तो अञ्जलि के जल के समान क्षणक्षण में निरन्तर झरता है और यौवन कमलिनी के पत्र पर पड़े हुए जल बिंदु के समान तत्काल ढलक जाता है। यह प्राणी वृथा ही स्थिरता की इच्छा रखता है।

* * * *

पुत्र स्त्री बाधव धन शरीरादि चले जाते हैं और जो हैं, वह भी अवश्य ही चले जायेंगे। फिर इनके कार्य साधन के लिये यह जीव वृथा ही क्यों खेद करता है?

* * * *

हे आत्मन्! शरीर को तू रोगों से घिरा हुआ समझ और यौवन को बुढ़ापे से घिरा हुआ जान तथा ऐश्वर्य सम्पदाओं को विनाशिक और जीव को मरणान्त जान।

* * * *

इस ससार रूपी समुद्र मे भ्रमण करने से मनुष्यों के जितने सम्बन्ध होते हैं, वे सब ही आपदाओं के घर हें। क्योंकि अन्त में प्राय सब ही सम्बन्ध निरस (दु खदायक) हो जाते हें। यह प्राणी उनसे सुख मानता है, सो भ्रम मात्र है।

* * * *

इस ससार में समस्त वस्तु दु खरूप नि सार जान कर बुद्धि-मानों को अपने हित रूप मोक्ष का साधन सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र धारण पूर्वक ध्यान का अभ्यास करना चाहिये।

* * * *

इस ससार में यह आत्मा अकेला ही तो अपने पूर्व कर्मों के सुख दु:ख रूप फल को भोगता है और अकेला ही समस्त गतियों मे एक शरीर से दूसरे शरीर को धारण करता है।

* * * *

जो योगी मुनि हें, वे निरन्तर समभावों से अथवा निर्ममत्व से राग द्वेष का, निराकरण (परास्त) करते रहते हें, तथा सम्यग्दर्शन के योग से मिथ्यात्वरूप भावो को नष्ट कर देते हें।

* * * *

धर्म गुरु हे, मित्र है, स्वामी हे, बांधव है, हितू है, और धर्म हा बिना कारण अनाथो का प्रीति पूर्वक रक्षा करने वाला है। इस प्राणी को धर्म के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है।

* * * *

क्लेश और व्याधि व्याप्त इस ससार मे कहीं भी सुख नहीं है, ऐसा ज्ञान होते हुए भी यह जीव सर्वज्ञ के फरमाये हुए धर्म को धारण नहीं करता। जिसके धारण करने से आत्मा का कल्याण होता है।

* * * *

मूर्ख मनुष्य इस आशा से कि, आज, कल, आते साल एवम् तीजे साल सम्पत्ति होगी, व्यर्थ ही दिन व्यतीत करते हैं परन्तु वे अज्ञानी दृष्टि डाल कर यों नहीं देखते कि अजली मे भरे हुए पानी के सदृश आयु गलित हो रही है।

* * * *

हे प्राणियो! जो धार्मिक कार्य कल करने का है वह आज ही कर डालो, क्योंकि भावी कल बहुत विघ्न बाधक है। इसलिये दूसरे प्रहर की भी राह नहीं देखना चाहिये। कल नाम काल का है।

* * * *

प्रकृतिका व्यवहार देखकर मुझे बहुत रज होता है क्योंकि प्रेम मे सने हुए स्नेही व सम्बन्धी पुरुष जो प्रात. काल दृष्टिगत होते थे वे ही पुन सन्ध्या समय दृष्टि नहीं आते।

* * * *

हे मनुष्यो! जागृत स्थान पर मत सोओ (अर्थात् धर्म कार्य मे प्रमाद न करो) और अनित्य स्थान पर विश्राम न करो (अर्थात्

अनित्य ससार मे सुख समझ कर आनन्द से बैठे न रहो) क्योंकि व्याधि, जरा और मृत्यु ये तीनो तुम्हारे पीछे लगी है।

* * * *

काल सर्प जिस देह को खा रहा है उस से मुक्त कर देह धारण रह सके ऐसी कोई कला नहीं, औषधि नही एवम् ऐसी कोई युक्ति नहीं है। (नाश होते हुए शरीर की रक्षा करने वाली जगत् में कोई वस्तु नही है।)

* * * *

हे भव्य प्राणियो! सब जीवों के छिद्रों को ढूंढता हुआ काल शरीर की छाया के समान किसी भी रीति से मनुष्य का पल्ला नहीं छोडता इस लिए धर्म कार्य मे दत्तचित्त रहो।

* * * *

इस अनादि समय प्रवाह मे परिभ्रमण करता हुआ और अनेक प्रकार के कर्मों से अधीन हुआ जीव सब यानियो मे जा कर रुला हुआ है। कोई योनि ऐसी नहीं जिस मे इस जीवन ने जन्म नही पाया हो।

* * * *

हे जीव! सहोदर, माता, पिता, पुत्र और स्त्री ये सब मृत जीव को जल की अजली देकर मरघट मही से गेह को वापस लौट आते हैं परन्तु इन सम्बन्धियों में से एक भी मृतक आत्मा के साथ नहीं जाता।

* * * *

पृथक् २ उत्पत्ति स्थान में, उत्पन्न हुए और ससार सम्बन्धी माता, पिता, बन्धु-प्रभृति से यह सारा जगत भरा हुआ है परन्तु वे न रक्षा कर सकते है और न शरण दाता बन सकते है, क्योंकि वे स्वत बधन मे ग्रसित हैं, फिर दूसरों के बधन कैसे छुडा सकते हैं ?

* * * *

दु ख से दु खी हो जीव नीर के बिना मीन के सदृश तड-फडाता है। रोग में ग्रसित जीव को सगे सम्बन्धी एवम् ससार के लोग देखते हैं, सम वेदना प्रकट करते हैं, परन्तु मुक्त करने का साहस कोई नहीं रखता।

* * * *

हे प्राणी ! घोर आरभ करके प्राप्त किए हुए धन को तेरे माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र वगैरह तथा कुटुम्बादि स्वजन समूह भोगते है परन्तु धन कमाते समय जो पाप हुआ है वह तो तुझे ही भोगना पडेगा।

* * * *

जीवन पानी के बुलबुले के समान है, वैभव पानी के बिंदु के समान चचल है और दौलत समुद्र की लहर की तरह अस्थिर है तथा स्त्री प्रभृति का प्रेम स्वप्न के समान है। इस लिए जो तू ये तत्त्व की बातें जानता है तो अनुकूल काम कर।

* * * *

जिस प्रकार कुश के अग्रभाग पर ओस का विन्दु अति अल्प काल तक ठहर सकता है, उसी प्रकार यह नर जीवन भी चचल है। इस लिए एक समय मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

* * * *

हे भव्य जीवो ! समझो। तुम क्यों नहीं समझते ? मृत्यु के पश्चात् बोहि ज्ञान मिलना दुर्लभ है। रात और दिन जिस प्रकार व्यतीत हो जाते हैं और फिर वापिस नहीं आते इसी तरह यह जन्म भी पुन २ नहीं मिलता।

* * * *

यह शरीर क्षण भगुर है। बादलों की भाँति यह मनुष्य भव चलायमान है। इस बीच मे जितना कुछ धर्म कर लिया, वही नर-भव का सच्चा सार है।

* * * *

जिस प्रकार सिंह मृग को दबोच कर अवश्य मार डालता है उसी प्रकार मृत्यु आयुष्य समाप्त होते ही जीव को ग्रस लेती है। उस समय उसके माता पिता अथवा भाई अश मात्र भी रक्षार्थ समर्थ नहीं होते।

* * * *

आश्चर्य है कि इस अनित्य ससार में लेश मात्र भी सुख नहीं क्योंकि जन्म दु.ख का मूल है। वृद्धावस्था रोग का मूल है और

मृत्यु भी दुख की खान है। साराश यह कि ससार ही दु ख सागर है। जिस से जीव क्लेश उठाते हैं।

* * * *

जैसे बत्ती दीपक को प्राप्त हो कर दीपक रूप बनती है, तैसे ही आत्मा सिद्ध का अनुभव करने से सिद्ध रूप होती है।

* * * *

आत्मा को आराधने योग्य आत्मा ही है, अन्य नहीं, आत्मा आत्मा का आराधन करने से ही परमात्मा बने है, जैसे काष्ट से काष्ट घिसने से अग्नि होवे।

* * * *

इस ससार में ऋद्धि सिद्धि भी तुझे कई वक्त मिलीं तथा स्वजन सम्बन्धी भी मिले, परन्तु जो तू आत्मानुभव करना चाहता है तो इन अनित्य बातों से विश्राम ले और वैराग्य धारण कर।

* * * *

जीव अकेला ही कर्म बाधता और यही अकेला जीव जन्म, वध और मृत्यु प्रभृति दु ख सहता है तथा कर्मों से ठगा जा कर जीव अकेला ही ससार में परिभ्रमण करता है।

* * * *

मन में अज्ञान नहीं होना चाहिए कि मैं सम्पत्तियों का घर हू और यह विचारा दीन विपत्तियों का घर है। यह मेरे समान नहीं हो सकता, इत्यादि महत्त्वशाली वाक्यों के उच्चारण से

सिवाय इस के कि हम ने अपनी आत्मा, संसार और परमात्मा को ठगा है।

* * * *

अपना उद्धार आप ही करे, अपने आप को कभी भी गिरने न दे। क्योंकि आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

* * * *

निर्जरादि का कारण आत्मा का शुद्ध भाव है। वही परम पूज्य है और उस शुद्ध भाव को धारण करने वाला आत्मा ही परम गुरु है।

* * * *

लोक वल्लभ अर्थात् सब लोगों को प्रिय हो, ऐसा काम करना, किसी को धोखा नहीं देना, और अनीति तथा धर्म के विरुद्ध आचरण से लोगों में प्रिय होने की इच्छा रखना नहीं।

* * * *

सब प्रकार के पाप से डरना, कारण कि पाप करने से इस लोक में निन्दा होती है, और दूसरे भव में नरकादि दुःख भोगने पड़ते हैं। पापी को सुख नहीं मिलता।

* * * *

किसी पर क्रोध नहीं करना। सब प्राणियों पर सम भाव रखना। एक क्रोड पूर्व तक संयम पाल कर उपार्जन किया हुआ

फल, क्रोध करने से क्षण भर में नष्ट हो जाता है।

* * * *

लोभी मनुष्य का चित्त हमेशा चिंता मे ही मग्न रहा करता है। उसे किसी तरह से भी सन्तोष प्राप्त नहीं होता। और लोभ के वश होने से प्राणी अयोग्य कार्य भी करने को तत्पर हो जाता है, जिस से इस दुनिया में उस की निंदा होती है।

* * * *

हे आत्मन्! अष्ट कर्म की शृङ्खला से जकडा हुआ जीव ससार कारागृह मे रहता है परन्तु इन्हीं अष्ट कर्मों से मुक्त हुई आत्मा सिद्ध वास स्थान मे बसती है।

* * * *

हे जीव! जिस प्रकार सन्ध्या समय मे पक्षियों का सयोग होता है, जिस प्रकार यात्रियों का राह में सम्बन्ध जुडता है उसी प्रकार स्वजनों का सम्बन्ध भी अल्प समय मे ही नष्ट होने वाला है।

* * * *

इस ससार मे परिभ्रमण करता हुआ जीव पर्वतों मे, गुफाओ मे, समुद्र के मध्य मे, झाड के अग्र भाग मे भी निवास कर आया है, तो फिर कोई ऐसा स्थान भी है जहां जीव ने अनन्त समय निवास नहीं किया हो?

* * * *

जो कठोर हो, दूसरों को दु ख पहुचाने वाली हो--चाहे

वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलनी चाहिए, क्योंकि उससे पाप का आगमन होता है ।

* * * *

जिसे मोह नहीं, उसका दु ख दूर हो गया । जिसे तृष्णा नहीं उसका मोह चला गया । जिसको लोभ नहीं, उसकी तृष्णा नष्ट हो गई और जिसके पास अर्थ सग्रह नहीं है, उसका लोभ दूर हो गया ।

* * * *

जैसे कछुआ खतरे को जगह अपने अगों को अपने शरीर मे सिकोड लेता है, उसी प्रकार पण्डित-जन भी विषयाभिमुख इन्द्रियों को आत्म-ज्ञान से सिकोड कर रखे ।

* * * *

प्रमादी पुरुष धन द्वारा न इस लोक मे अपनी रक्षा कर सकता है, न पर लोक मे । फिर भी धन के असीम मोह से, जैसे दीपक के बुझ जाने पर मनुष्य मार्ग को ठीक-ठीक नहीं देख सकता उसी प्रकार प्रमादी पुरुष न्याय-मार्ग को देखते हुए भी नहीं देखता ।

* * * *

भले ही कोई नग्न रहे या महीने-महीने में भोजन करे, परन्तु यदि वह माया युक्त है, तो उसे बार-बार जन्म लेना पडेगा ।

* * * *

फ काम, भोग क्षण-मात्र सुख देने वाले हैं तो चिरकाल तक दु ख देने वाले । उनमे सुख बहुत थोडा है, अत्यधिक दु ख ही दु ख है । मोक्ष-सुख के वे भयकर शत्रु हैं, और अनर्थों की खान हैं ।

° ° ° °

सभी जीवों को अपनी आयु प्रिय है । वे सुख चाहते है और दु ख सब के प्रतिकूल है । वध सब को अप्रिय है । सब को अपना जीवन प्रिय है । इसीलिए किसी को मारना अथवा कष्ट न पहुँचना चाहिए ।

° ° ° °

अगर आपको सुख की इच्छा है । और आत्मा का कल्याण करना चाहते हो, तो दत्त चित्त होकर सन्त-शब्द पुस्तक को पढकर, अमल करने से कल्याण होगा ।

° ° ° °

शान्ति । शान्ति ।। शान्ति ।।।